ANNEXURE

[As refered to in Para 11 of O.M.]

INSTRUCTIONS FOR REVISION OF PENSION AND ALLIED ELEMENTS USING READY RECKONERS AND TABLES

Part 'A'

1. The cases of civilian pensioners where revision of pensi[on is] required to be done and those where revision is not required are [pre]sented below:—

Revision of pension required for pensioners who retired on or before 30.3.79 and were alive on 1.4.79.		Revision of pensio[n] not required.
If alive on date, pension to be refixed by Pension Disbursing Authority concerned and arrears paid if pensioner opts for revision as per ready reckoner in the following types of pension: 1. Retiring pension 2. Superannuation pension 3. Compensation pension 4. Invalid pension 5. Compassionate Allowance.	If not alive on date of application application for Life time arrear from legal heir to be forwarded to respective Accounts Officer.	1. For pensioners retired on or ... 30.3.79 but not a[live] on 1.4.79. 2. For pensioner w[ho] retired on or aft[er] 31.3.79. 3. Types of pension n[ot] to be revised:—

2. The Pension Disbursing Authori[ty] ... the application and option form ensurin[g] ... and signed by the pensioner.

3. In cases in which the pensioner ... on actual calculation or where no option ... covered by ready-reckoners), the Pensi[on] ... will attest the entries relating to the ... Officer in the application form and forw[ard] ...tions to the concerned Accounts Officer through usual channel by Registered Post.

ship and forward the documents/application duly attested to the
cerned Accounts Officer.

5.1 In those cases where the pensioner has opted for
nsion on the basis of ready-reckoners the Pension Disbu
refix the pension and pay the arrears using the calc
nstructions contained in part 'B' of these instruct

ई शिक्षा-केन्द्रों
ा अवसर मिला, और विद्यार्थियों के समक्ष ब्रह्मचर्य्य,
न आदि विषयों पर व्याख्यान देने का अवसर प्राप्त
ैव व्याख्यान के बाद विद्यार्थियों ने प्रकट किया कि घर
इन विषयों की कोई हमको शिक्षा नहीं देता, इसलिये
होने से हम में से कई जब कुछ गलतियां कर डालते
पीछे से पछताना पड़ता है, इसलिये हम चाहते हैं कि
ियों को पहले ही मालूम हो जाया करे कि किस समय
या करना चाहिये। विद्यार्थियों का उपर्युक्त कथन सर्वथा
है। यह दुःख की बात है कि इस समय नवयुवकों का
जीवन और वह जीवन जो स्कूलों और पाठशाला आदिकों
म्बन्ध रखता है, अनियन्त्रित है; और इसीलिये अनेक
ष्ट कार्य्य होते रहते हैं। इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए
के पृष्ठ लिखे गये हैं। जिनमें श्रेणीवद्ध शिक्षा Graded
ourse के ढंग से विद्यार्थी जीवन के किस भाग में क्या करना
चाहिये अंकित किया गया है। व्यायाम और आसनों के संबन्ध
में अपने अनुभव के सिवा, अनेक योग्य डाक्टरों की सम्मति
भी लेकर यह निश्चय किया गया है कि किस आयु में कौन
आसन या व्यायाम उपयोगी होगा। इस बात की पूरी कोशिश
की गई है कि पुस्तक विद्यार्थियों के लिये अधिक से अधिक
उपयोगी हो।

रामगढ़, नैनीताल
जन्माष्टमी, १९९० वि० } —नारायण स्वामी

॥ ओ३म् ॥

विद्यार्थी-जीवन-रहस्य

पहला अध्याय

पहला सर्ग

प्रारम्भ

संसार में मनुष्य पुरुषार्थी बनकर उन्नत होने के लिए उत्पन्न होता है। संसार की कोई वस्तु नहीं जो गतिशील न हो। सूरज चलता है, पृथिवी चलती है, चन्द्रमा गति में है, कोई नक्षत्र नहीं जो ठहरा हुआ हो। संसरण-शील होने ही से जगत् संसार कहलाता है। इसमें बड़ी से बड़ी वस्तु सूर्य्य यदि गति में है तो छोटी से छोटी चीज परमाणु (Atom) विद्युत्कणों (Electron) के, उसके भीतरी केन्द्र के चारों ओर परिभ्रमण करने से सूर्य्य-मण्डल का एक विलक्षण उदाहरण बना हुआ है। फिर मनुष्य यहां किस प्रकार अकर्मण्य और आलसी बनकर जिन्दा रह सकता है? इसीलिए वेद में एक जगह कहा गया है कि "मनुष्य को कर्म (पुरुषार्थ) करते हुए ही १०० वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए, इसके सिवा दूसरा और कोई मार्ग (जिन्दा रहने का) नहीं है।" ❋ फिर एक दूसरी जगह कहा गया है कि "मनुष्य को ऊपर चढ़ना चाहिए नीचे नहीं गिरना चाहिए।" + क्योंकि "नीचे गिरने (अवनति) का मार्ग भयप्रद है। ×" "यह अवनति

❋ कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥ (यजुर्वेद ४०। २)

+ उत्क्रामानः पुरुष मावपन्था ॥ (अथर्ववेद ८। १। ४)

× एतं पन्थानं मागाः एषममः। (अथर्ववेद ८। १। १०)

का मार्ग तम=अन्धकार का मार्ग है, इसमें नहीं गिरना चाहिये।"! इत्यादि। इसी प्रकार की एक कहावत है जो पश्चिमी देशों में भी प्रचलित है अर्थात् "प्राकृतिक नियम यह है कि उन्नति करो या नष्ट हो।" ? अस्तु यह स्पष्ट है कि मनुष्य-जीवन पुरुषार्थमय होना चाहिए जिससे उसका प्रत्येक पग उन्नति की ओर पड़े—

उन्नति का तात्पर्य

उन्नति का भाव यह है कि मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति हो। मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन किस प्रकार उन्नत हो सकता है, पहले यही बात विचारणीय है। मनुष्य दो वस्तुओं का संघात है—(१) शरीर (२) आत्मा अर्थात् वह शक्ति जो शरीर का नियन्त्रण करती है। आत्मा के स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न हैं। इन्हीं गुणों को क्रियात्मक रूप में परिवर्तन करने के लिए मनुष्य को शरीर मिला करता है। यह बाह्य शरीर दो प्रकार की इन्द्रियों का समुदाय होता है (१) ज्ञानेन्द्रिय (२) कर्मेन्द्रिय। इनमें से ज्ञानेन्द्रिय आत्मा के ज्ञान गुण और कर्मेन्द्रिय उसके प्रयत्न गुण को सार्थकता देने के लिये होते हैं। हमारे शरीर की बनावट ही आत्मा के इन दो ही गुणों के होने का पुष्ट प्रमाण है।

समस्त शरीर के दो प्रकार के अवयव और उसके अन्तर्गत दो प्रकार के ही कार्य

बाह्य शरीर के साथ जब हम शरीर के भीतरी अवयवों पर भी दृष्टि-पात करते हैं तो प्रकट हो जाता है कि जहां बाह्य शरीर इन्द्रियमय है और मनुष्य के इच्छित कार्यों का साधन है,

! एतत् नमः मा प्रपन्थाः ॥ (अथर्ववेद ८। १। १०),

? Grow or die is the nature's motto.

वहां उसके भीतरी अवयव हृदय, फेफड़ा, यकृत आदि उसके शरीर में होने वाले अनिच्छित कर्मों के साधन हैं। जो कार्य्य इरादा करके किये जाते हैं जैसे देखना, सुनना, खाना, पीना आदि उन्हें इन्द्रियों के द्वारा हुए इच्छित कार्य्य कहते हैं और जो कार्य्य विना इरादा किये, शरीर के भीतर होते हैं जैसे भोजन का पाचन-कार्य्य, रक्त का परिभ्रमण आदि, ये शरीर के भीतरी अवयवों द्वारा हुए अनिच्छित काम कहे जाते हैं। व्यक्तिगत उन्नति का अर्थ (१) शरीर के समस्त भीतरी और बाहरी अवयवों का पुष्ट होना (२) मन, बुद्धि, चित्त आदि समस्त अन्तःकरणों तथा आत्मा का शुद्ध और बलवान होना है। अब इनके साधनों पर विचार करना चाहिये :—

उन्नति के साधन

१—शारीरिक उन्नति के साधन व्यायाम और प्राणायाम हैं। इनमें से व्यायाम में (अ) सभी प्रकार की वरजिश और (ब) आसन सम्मिलित हैं और प्राणायाम में (स) दौड़ना (द) गहरे श्वास लेना तथा (ह) श्वास-सम्बन्धी सभी क्रियाओं का समावेश है—

२—मानसिक उन्नति के साधन (१) यम* (२) नियम× और (३) प्राणायाम हैं—

---

* यम ५ योग्यताओं का नाम है :—(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय = चोरी न करना (४) ब्रह्मचर्य्य और (५) अपरिग्रह = लालच न करना—

अहिंसा सत्याऽस्तेय ब्रह्मचर्य्याऽपरिग्रहा यमाः।

(योग दर्शन २। ३०)

× नियम भी ५ ही हैं—(१) शौच (२) सन्तोष (३)

इन दोनों प्रकार के साधनों को काम में लाने का उद्देश्य यह है कि शरीर, अन्तःकरण और आत्मा जिस-जिस कार्य के लिये हैं उन्हें अपने-अपने कार्यों के करने और कर सकने की अधिक से अधिक योग्यता प्राप्त हो जावे। वे साधन किस प्रकार काम में लाये जावें इनका वर्णन आगे किया जायगा।

दूसरा सर्ग

विद्यार्थी जीवन

वर्तमान काल में विद्यार्थी जीवन २४ वर्ष तक समझा जा सकता है*। यही समय है जिसमें शरीर के समस्त अवयवों

---

(४) स्वाध्याय और (५) ईश्वर प्रणिधान = निष्काम भावना से कर्म करते हुए उन्हें ईश्वरार्पण करना।

शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥
(योग दर्शन २। ३२)

* प्राचीन काल में विद्यार्थी-जीवन ४८ वर्ष तक पूरा होता था। जो विद्यार्थी ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए २४ वर्ष तक अध्ययन करता था वह वसु, जो ३६ वर्ष तक अध्ययन करता था, रुद्र और जो ४८ वर्ष तक अध्ययन करता था आदित्य ब्रह्मचारी कहलाता था।

(२) चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति। आषोडशाद्वृद्धि। आपञ्चविंशते-र्यौवनम्। आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता। ततः किञ्चित्प-रिहाणिश्चेति।

(सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ३५)

की वृद्धि होती है*। तीसरे वर्ष से बालक इस योग्य हो जाता है कि उसे शिक्षा दी जा सके, परन्तु इस देश में यह आयु बालक के माता-पिता की गोद ही में व्यतीत करने की समझी जाती है, इसलिए प्रायः चौथे वर्ष तक की शिक्षा और दीक्षा का उत्तरदायित्व माता और पिता पर ही रहता है। ५ वें वर्ष से बालक गुरु के अधीन किया जाता या किया जा सकता है। योरुप और अमरीका में तो २ वर्ष से लेकर ५ वें वर्ष तक के बालक, बालकों× के स्कूलों में ही रखे जाते हैं, और उन विद्यालयों में न केवल उन्हें मौखिक आचार सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है बल्कि यदि उनके अंगोपांगों में कोई त्रुटि भी होती है जैसे बालकों का हकलाना अथवा हाथ पांव की बनावट में किसी त्रुटि का हो जाना इत्यादि, तो उन्हें भी दूर किया जाता है और बतलाया जाता है कि लगभग ६० प्रतिशत तक सफलता, ऐसी अवस्थाओं में ऐसे स्कूलों के संचालकों को होती है।

अस्तु, अब प्रश्न यह है कि आरम्भ से लेकर २४ वर्ष की

---

* अर्थात् शरीर की ४ अवस्थाएं हैं:—(१) वृद्धि जो सोलहवें वर्ष से (२) यौवन जो २५ वें वर्ष से प्रारम्भ होती है। (३) सम्पूर्णता जो ४० वर्ष पूर्ण हो जाने पर होती है और (४) किञ्चित् परिहाणि—जो इसके बाद से अन्त तक रहती है।

× इन स्कूलों को नरसरी-स्कूल (Nursery School) कहते हैं। अमरीका में एक (Nursery University) भी है जिस में शिक्षा देते समय बालकों की प्रवृत्ति मालूम करके उन्हें उसके अनुरूप कार्यों में लगाया जाता है जिसमें अधिकतर सफलता होती है।

आयु का समय-विभाग किस प्रकार का होना चाहिये, जिससे अपेक्षित शक्ति-सम्पन्नता बालकों में आ जावे। यह समय-विभाग और उसमें किये जाने वाले कार्य, प्रारम्भ से अन्त तक एक नहीं हो सकते। उनमें आयु के भेद होने से, क्रमशः भेद होता चला जाता है। आयु का भेद होने के कारण बालकों की यह अवस्था कई विभागों में विभक्त की गई है जिसका विवरण इस प्रकार है:—

अवस्था-भेद

बालकों की २४ वर्ष तक की आयु चार भागों में विभक्त है:—(१) शैशवावस्था (२) बाल्यावस्था (३) किशोरावस्था (४) युवावस्था। इनमें से प्रत्येक अवस्था का कार्य्यक्रम, शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति की दृष्टि से पृथक्-पृथक् है। उस कार्य्यक्रम में जिन-जिन बातों का समावेश होगा उनकी उपयोगिता का संक्षिप्त-सा विवरण भी उन्हीं कार्य्य-क्रमों के साथ दिया जायगा। उस कार्य्य-क्रम से बाहर कुछेक बातें ऐसी हैं, जिनकी उपयोगिता सबके लिए एक जैसी है, इसलिए पहले उन्हीं सांझे की बातों का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है।

दूसरा अध्याय

पहला सर्ग

वे सांझे की बातें दो प्रकार की हैं। एक तो ऐसी हैं जिन्हें नियम से प्रतिदिन कार्य्य में परिणत करना चाहिये। दूसरी ऐसी हैं जिन्हें सदैव ध्यान में रखना चाहिये और जरूरत होने

पर काम में लाना चाहिये। इनमें से पहले प्रकार की बातें पहले लिखी जाती हैं—

आवश्यक और दैनिक कर्त्तव्य

(१) समय पर सोना, समय पर उठना

दिन समाप्त हो जाने पर संध्या काल के उपरान्त जो समय होता है वह प्रायः ८ से १० बजे तक समझा जाता है, उस की अपेक्षा प्रातः काल का ३ से ५ बजे तक का समय अधिक उपयोगी हुआ करता है। कारण स्पष्ट है, रात का समय दिन भर की थकावट के और प्रातः काल का समय रात भर के आराम के बाद का समय हुआ करता है। इसलिये रात्रि में आम तौर पर ८ और ६ बजे के मध्य सो जाना और प्रातःकाल ३ और ४ के मध्य उठ बैठना चाहिये। ❀शिशु और बाल्यावस्था वालों के सिवा किशोर और युवकों के लिये सात-आठ घण्टा तक सोना काफी है। आम तौर से विद्यार्थी-जीवन में शैशवावस्था से लेकर युवावस्था पर्यन्त तख्त पर सोने का अभ्यास रखना चाहिये और विशेषावस्थाओं को छोड़ कर अधिक गुदगुदे बिस्तरे पर कभी नहीं सोना चाहिये। ये दोनों बातें ब्रह्मचर्य्य की साधक हैं। अन्त की अवस्था वालों तीनों को सदैव पृथक् २ सोना चाहिये, परन्तु एकान्त में अथवा दो दो को मिल कर एक एक जगह कदापि नहीं सोना चाहिये।

(२) मलत्याग

यह अभ्यास बना लेना चाहिए कि जिस वक्त उठने के समय आंख खुले तो उसी समय बिस्तरा छोड़ कर उठ बैठना

❀ Early to bed and early to rise makes a man healthy, wealthy and wise.

चाहिये। पड़े-पड़े इधर उधर की बातें सोचने से चित्त चंचल हो उठता है और अनेक बुराइयों की ओर जाने लगता है। इसी प्रकार जब सोने के लिये लेटें तब लेटते ही सो जाना चाहिये। तख्त से उठते ही शौच जाना चाहिये। शौच नियम से दिन में दो बार प्रातः और सायंकाल जाना चाहिये।

शौच से पहले पानी पीना

यदि कुछ कब्ज रहता है तो रात्रि में सोते समय तांबे के पात्र में पानी भर कर रख देना चाहिए, और प्रातःकाल उठते ही पीकर कुछ टहलना और उसके बाद शौच आदि जाना अच्छा होता है। सभी आयु वाले विद्यार्थियों के लिये शौच के साथ ही दो काम कर लेने चाहिएँ—

दो आवश्यक कर्त्तव्य

(१) मूत्रेन्द्रिय के सिरे की त्वचा को उलट कर देखना चाहिये कि भीतर का अंग बिल्कुल साफ़ है या एक प्रकार की सफ़ेद वस्तु उस पर इधर-उधर जमी हुई है। यदि जमी हो तो उसे छुटा कर पानी से धोकर उस अंग को साफ़ कर देना चाहिए; अन्यथा यह वस्तु जब भीतर अधिक एकत्रित हो जाती है तो खुजली पैदा करती है और स्वाभाविक रीति से उसे खुजलाना पड़ता है और यहीं से खराबी पैदा होकर यह क्रिया अनेक बुरी आदतों का कारण बनती है। (२) दूसरा काम यह करना चाहिये की बहुत पतली ठंडे पानी की धार मूत्रेन्द्रिय के सिरे के भीतरी भाग में ठीक छिद्र के ऊपर डालनी चाहिये एक दो मिनट तक इस धार को डालना उपयोगी होगा और धार डालने के बाद समस्त मूत्रेन्द्रिय और अंडकोशों को अच्छी तरह ठंडे पानी से तर कर देना चाहिए। यह काम स्नान के समय भी किया जा सकता है। जहाँ सुभीता हो करना चाहिये।

शौच के लिए अथवा उपर्युक्त मूत्रेन्द्रिय-स्नान के लिये गर्म पानी कदापि काम में नहीं लाना चाहिए।

(३) दाँतों की सफ़ाई

दांतों को साफ़ और मल-रहित रखना अत्यन्तावश्यक है। इसके लिये ३ काम करने आवश्यक हैं:—(१) दातुन (२) मंजन (३) तेल, इनकी विधि इस प्रकार है:—

दातुन और उसकी प्रयोग-विधि

सबसे अधिक लाभदायक दातुन मौलसरी की होती है। उसके न मिलने पर बबूल की करनी चाहिए। वह भी न मिले तो नीम की दातुन भी कृमिनाशक होने से उपयोगी समझी जाती है। दातुन को दोनों डाढ़ों से बारी-बारी आहिस्ते-आहिस्ते कुचल कर, कूची बन जाने पर उसे पानी से साफ़ करके उससे समस्त डाढ़ और दाँतों को धीरे-धीरे परन्तु अच्छी तरह से रगड़ कर साफ करना चाहिए और मसूड़ों को भी इसी प्रकार से दबा-दबाकर रगड़ना चाहिये जिससे वे दब तो खूब जायें, परन्तु रगड़ से छिलने न पावें। इस क्रिया में शुरू से अन्त तक मुँह से जो राल निकले उसे मुँह नीचा करके गिराते रहना चाहिये जिससे बादी और खराब मादा सब निकल जावे। दाँतों को दातुन से रगड़ते समय प्रत्येक दाँत को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे भी रगड़ना चाहिये जिससे कोई विजातीय द्रव्य उनके मध्य में बाकी न रहे। उस के बाद दातुन को चीर कर उससे जुबान को खूब साफ करे। इस प्रकार दातुन करके पानी से, अच्छी तरह मुँह, दाँत और जुबान साफ कर डाले।

मञ्जन की प्रयोग विधि

विदेशों से दाँतों की सफाई के लिये अनेक प्रकार के चूर्ण

(Dental Powder) और गीले (Tooth paste) मंजन आते हैं। मंहगे होने के सिवा उनकी उपयोगिता और शुद्धता भी संदिग्ध ही होती है; इसलिये उनको इस्तेमाल न करके एक मञ्जन स्वयं बना लेना चाहिये। इस मञ्जन में तीनों प्रकार की औषधियाँ हैं:—दाँतों को साफ और दृढ़ बनाने और कृमि-नाश करने वाली। मञ्जन का नुस्खा यह है :—

(१) रूमी मस्तगी (खूब साफ करके बारीक पिसी हुई)		१ तोला
(२) मौलसरी की छाल (बारीक पिसी हुई)		१ तोला
(३) मजीठ (बारीक पिसा हुआ)		१ तोला
(४) माजूफल	(बारीक पिसा हुआ)	१ तोला
(५) कपूर	" " "	१ माशा
(६) अजवायन का सत	" " "	आधा माशा
(७) तूतिया भुना और बारीक पिसा हुआ		१ चना भर
(८) फिटकरी भुनी और बारीक पिसी हुई		१ माशा
(९) सेंधा नमक	(बारीक पिसा हुआ)	१ तोला

यथा सम्भव बारीक पीसना चाहिये। सबको मिला देने से मञ्जन तैयार हो जाता है। यह मञ्जन किसी एक शीशे के पात्र में मुँह बन्द करके रखना चाहिये। इस मञ्जन के प्रयोग का सब से अच्छा रात्रि का वह समय है जब खाने-पीने का सब काम समाप्त हो जाता है। इसे दाँतों में भीतर और बाहर दोनों ओर लगा कर अच्छी तरह से राल निकलने देना चाहिये। जब राल निकल जावे तब बिना कुल्ला किये सो जाना चाहिये। इससे इसका प्रभाव दाँतों में रात भर रहता है। प्रातः काल उठ कर कुल्ला करके मुँह साफ कर लेना चाहिये।

तेल की प्रयोग विधि

शुद्ध तिल या सरसों के तेल में अच्छा बारीक पिसा हुआ सेंधा नमक मिला कर रख लेना चाहिये। प्रातःकाल कुल्ला-दातुन आदि से निवृत्त होने पर यदि कुछ खाने-पीने का अभ्यास हो तो खा-पीकर और मुँह साफ करके इस नमक मिले तेल की अंगुली से दांतों और डाढ़ों में भीतर-बाहर सब ओर से लगा कर मल दो और एक दो मिनट तक उस तेल को जो दाँतों से छूट कर राल के साथ मुँह में जमा होता है मुँह के प्रत्येक भीतरी भाग में घुमा-फिराकर निकाल दो।

इन तीन विधियों से दांत साफ, दृढ़ और नीरोग रहते हैं। एक बात यह भी इसी के साथ याद रखनी चाहिये कि जब भी कुछ भोजनादि करे तो उसके बाद दाँतों को साफ कर लेना चाहिये जिससे भोजन का कोई जर्रा दांतों के बीच में या दांतों से लगा हुआ बाकी न रहे अन्यथा इस प्रकार से दांतों में लगे हुए जर्रे दांत-सम्बन्धी अनेक रोगों की उत्पत्ति के कारण होते हैं।

स्नान

शरीर को स्नान द्वारा शुद्ध रखना अत्यन्त आवश्यक है। शरीर के आन्तरिक कार्य्य-बाहुल्य से; शरीर में प्रतिक्षण मल उत्पन्न होता रहता है। मल-मूत्र आदि द्वारों से मल निकलता रहता है। इनके सिवा शरीर के त्वचा-छिद्रों (रोम कूपों=मसाम (Po.es) से, प्रतिक्षण पसीने आदि के रूप में मल निकलता रहता है। पसीना मिश्रित मल में से उसका जलीय-भाग भाप बनकर उड़ जाता है परन्तु मल-भाग (Urlc acid) छिद्रों के मुँह पर जमा रह जाता है और छिद्रों के मुँह को बन्द कर देता है जिससे शरीरान्तर्गत बना हुआ नया मल नहीं निकलने

पाता और शरीर के भीत जमा हो कर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बन जाता है। स्नान करते समय शरीर को अच्छी तरह मलने और स्नान के बाद किसी खुरदरे वस्त्र से शरीर को रगड़-रगड़ कर पोंछने से वह एकत्रित और जमा हुआ मल त्वचा-छिद्रों के मुँह से दूर होकर उन्हें साफ कर देता है जिससे नया उत्पन्न मल शरीर से निकलता रहता है। अतः स्नान का अनिवार्य्य होना स्पष्ट है। स्नान यथा-सम्भव ताजे और ठंडे जल से करना अच्छा है।

मालिश

कभी-कभी स्नान से पहले शरीर पर तेल मल लेना अच्छा है। यह तेल, त्वचा-छिद्रों के मार्ग से शरीर के भीतर जाकर, शरीर के निर्माता प्राकृतिक कोशों (cells) को पुष्ट करता है, और त्वचा की भी पुष्टि करता है। मलने के लिये मीठा या कडुआ (तिल या सरसों का) तेल ही उपयोगी होता है।

एक और आवश्यक कार्य

पाँव के अंगूठों की मोटी नसों का संबन्ध जननेन्द्रिय से है। इन नसों के दबाने से जननेन्द्रिय में अनावश्यक उत्तेजना नहीं उठती। इसके लिये दो बातें काम में लाई जाती हैं (१) खूंटी-दार खड़ाऊओं का पहनना। स्नान और यथासम्भव घर में अन्य अवसरों पर इन खूंटीदार खड़ाऊंओं के पहनने का अभ्यास करना ब्रह्मचर्य्य का साधक होता है (२) स्नान के समय पाँव की, प्रायः सभी उंगलियों के बीच के भाग को, हाथ के अंगूठों से एक दो मिनट तक मलना उपयोगी होता है। इससे भी सं० २ में वर्णित आवश्यकता की पूर्त्ति होती है। लंगोट को भी नियम से पहनना आवश्यक है।

दूसरा सर्ग

भोजन

भोजन के सम्बन्ध में सबसे पहली बात, जो समझ लेने की है, वह यह है कि भोजन उद्देश्य नहीं है; किन्तु उद्देश्य-पूर्त्ति का एक साधन है, जिसे तीसरी श्रेणी का साधन कह सकते हैं। उद्देश्य शारीरिक और मानसिक उन्नति है, उसी का एक साधन भोजनहै। इसलिए भोजन ऐसा होना चाहिये जिससे शारीरिक और मानसिक उन्नति होसके। जो लोग स्वाद लेने के लिये ही भोजन करते हैं उन्हें समझ लेना चाहिये कि वे सीधे मार्ग से भटके हुए हैं। ऐसे लोगों को एडिसन की बात याद कर लेनी चाहिये जो उसने १०० वर्ष तक ज़िन्दा रहने के साधनों पर विचार करते हुए कही थी। उसका कथन है कि "यदि तुम अपनी जबान पर अधिकार कर लो तो तुम अपने समस्त शरीर और मस्तिष्क पर सुगमता से अधिकार कर सकते हो।*"

सात्विक भोजन

अस्तु, भोजन सादा और सात्विक होना चाहिए। सादा, उत्तेजना-शून्य और निरामिष भोजन हो को सात्विक भोजन कहते हैं। शरीर में ५ प्रकार के पदार्थ होते हैं इन्हीं की वृद्धि के लिये भोजन किया जाता है। इसलिए भोजन के भी यही पाँच अंग समझे जाते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है:—

---

* एडिसन के शब्द ये हैं:—If you can conquer your tongue only you are sure to conqure your whole body and mind at ease.

भोजन के अंग

(१) प्रोटीन (२) चरबी (३) कर्बोज (४) लवण (५) जल। इसमें से (१) प्रोटीन (Protein) (१) कार्बन (५० भाग) (२) औक्सीजन (२२ भाग) (३) नैट्रोजन (१६ भाग) हैड्रोजन (७ भाग) और गन्धक (१ भाग) से मिलकर बनती है।

(२) चरबी (Fat) (१) कार्बन, (२) औक्सीजन और (३) हैड्रोजन से बनती हैं (३) कर्बोज (Starchy Matter) (१) शक्कर (Sugar) (२) शर्कराजनक (Glycogen) (३) श्वेतसार=मांड (Starch) और (४) काष्टोज=लकड़ी या शाकों का सार (Cellulose) से बनता है।

शरीर का मुख्य भाग मांस, जो शरीर में ४२ प्रतिशतक होता है, प्रोटीन से बना करता है। इसी प्रोटीन से शरीर के निर्माता कोश (Cells) भी बनते हैं। चरबी और करबोज शक्ति पैदा किया करती हैं। लवण से हड्डियां मजबूत होती हैं। इसी उद्देश्य के लिये भोजन किया जाता है। अब यहाँ एक सूची दी जाती है जिससे जाना जा सके कि किन-किन वस्तुओं में उपर्युक्त पाँच पदार्थ, किस किस मात्रा में हैं:—

संख्या नाम पदार्थ	प्रोटीन	चरबी	कर्बोज	खनिज पदार्थ	अलक्ष्य
१. गेहूं	११.४७	२.०४	७०.९०	३.१४	११.८३
२. गेहूँ का आटा	१०.७	१.१	७५.४	०.५	×
३. गेहूँ का मैदा	७.९	१.४	७६.४	०.५	×
४. चोखर	१६.४	३.५	४३.६	६.	१२.५
५. मसूर की दाल	२५.४७	३.०	५५.०३	×	×

❀ Sotter & and Firth s theory & Practice Of hygien (1908)

६. मूंग की दाल	२३.६२	२.६६	५३.४५	×	×
७. उर्द ,,	२२.३३	१.६५	५५.२२	×	×
८. अरहर ,,	२१.७०	२.५०	५४.०६	×	×
९. बादाम	२४.००	५४.०	१०.०	३.०	६.०
१०. मूंगफली	२७.५	४४.५	१५.७	२.५	७.५
११. गाय का दूध	३.५	४.०	३.५	०.७५	८७.२५
१२. भैंस का दूध	६.११	७.४५	४.१७	०.८७	८१.४०
१३. मांस बकरे का	१८.०	५.०	×	१.०	७६.०
१४. मांस गाय-बैल	२०.०	१.५	०.६	१.२	७६.७
१५. मांस मुर्गे का	२२.७	४.१	१.३	१.१	७०.४
१६. अंडेकीजरदी	१६.१२	३१.३६	×	१.०१	५१.३

उपर्युक्त तालिका से मांसाहार की अनुपयोगिता प्रमाणित होती है और यह भी कि भोजन में, इन पदार्थों में से ऐसे पदार्थ शामिल करने चाहियें जिन से भोजन की गरज पूरी हो सके। मिठाई की अपेक्षा फलों का इस्तेमाल उपयोगी है।

भोजन से सम्बन्धित कुछ आवश्यक बातें

भोजन के सम्बन्ध में कुछेक आवश्यक बातें ध्यान देने योग्य हैं:—(१) भोजन में सब्जी (हरे शाक) की मात्रा अधिक होनी चाहिये और यथा-सम्भव मसाले कम होने चाहियें, (२) खटाई की अधिकता बहुत हानिकारक है। इस से राल निकालने वाली ग्रन्थियों के मुँह संकुचित हो जाते हैं और इस प्रकार राल के कम निकालने या न निकालने से भोजन की पाचन क्रिया में बाधा पहुँचती है।

(३) भोजन नियत समय पर प्रसन्नता के साथ, जल्दी न करके दाँतो से खूब कुचल कर खाना चाहिये। भोजन जितना अधिक चबाया जायगा उतनी ही अधिक राल निकलेगी और

जितनी ही अधिक राल निकल कर चबाये हुए भोजन में मिलेगी उतना ही शीघ्र भोजन पचेगा। भोजन के बाद ३ घण्टे तक कुछ नहीं खाना चाहिये।

(४) ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, भयादि के भावों को रखते हुए अथवा भोजन को बुरा समझते हुए जो भोजन किया जाता है वह कभी नहीं पचता। उससे मन्दाग्नि आदि रोगों की उत्पत्ति होती है।

पानी

भोजन के अन्त में जलपान सर्वथा हेय है। यदि शाकादि में रसा न हो तो थोड़ा पानी भोजन के मध्य में पी लेना चाहिये अन्यथा सबसे अच्छा समय पान पीने का, भोजन के बाद पहले और दूसरे घण्टे के बीच का होता है, परन्तु आम, तौर से पानी पीने में कभी नहीं करनी चाहिये। अधिकतर कब्ज जल के कम पीने से हुआ करता है। एक दिन में एक स्वस्थ युवा पुरुष को, ऋतुओं के लिहाज से, दो से तीन सेर तक पानी पीना चाहिये। रात्रि में सोते समय और भोजन से एक घण्टा पहले भी पानी पीना उपयोगी होता है। यदि इस पर दस्त न हो और कब्ज कुछ तकलीफ ही देता रहे तो आधा सेर पानी गर्म करके उसमें चाय के (छोटे) चम्मच भर पिसा हुआ सेंधा नमक डालकर पी लेना चाहिये और चित्त लेटकर नाभि के चारों ओर पेट को मलने से दर्द जाता रहता है और दस्त हो जाता है।

रालग्रन्थि

Salivary Gland

संसार में दो प्रकार के प्राणी हैं (१) एक वे जिनके दाँत

हैं (२) दूसरे वे जिनके दाँत नहीं हैं जैसे चिड़िया आदि। जिनके दाँत नहीं हैं उनके पेट में एक प्रकार की पथरी (Gizzerd) रक्खी गई है जिससे वे उनसे दाँतों का काम लेकर भोजन को पीस लेते हैं। मनुष्य दाँत रखता है इसलिए उसके पेट में यह पथरी नहीं होती। दाँत के सिवा मुँह के भीतर ६ राल ग्रन्थियां हैं जिनमें से चार तो जिह्वा और जबड़े के नीचे और दो गले में होती हैं। जब भोजन चबाकर किया जाता है तब इन ग्रन्थियों में से राल (लार) निकलने लगती है और भोजन से मिलकर उसे पचने योग्य बना देती है। इसीलिए भोजन को चबा-चबा कर खाने का विधान है।

सादगी से रहना

सादगी से रहना स्वयमेव एक श्रेष्ठ गुण है। भारतीय सभ्यता का आदर्श सादगी से रहना और उच्च विचार रखना (Plain Living and high thinking) है जो विद्यार्थी बनाव-चुनाव के साथ मांग पट्टी रखते हुए शृङ्गार-प्रिय होते हैं उनमें से प्रायः सौ में ९९ अब्रह्मचारी होते हैं। ब्रह्मचर्य्य के लिए सादगी से रहना आवश्यक है। सादगी के साथ रहना ही एक महत्त्व की बात (Simpleness is itself greatness) है। इसलिये सभी श्रेणी के विद्यार्थियों को इस गुण को अपनाना चाहिये।

समय विभाग और डायरी

निपोलियन ने आस्ट्रिया पर चढ़ाई की। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। निपोलियन की नई सेना सहायता के लिए आ गई; परन्तु आस्ट्रिया की नई सेना के आने में ५ मिनट की देर हो गई। फलस्वरूप आस्ट्रिया की हार हो गई। निपोलियन ने उस समय अभिमान से कहा कि आस्ट्रिया के लोग ५ मिनट का मूल्य नहीं जानते थे। जीवन का प्रत्येक

क्षण बड़ा मूल्यवान् होता है। उससे लाभ उठाने के लिये आवश्यक है कि समय-विभाग बनाकर ऋतुचर्या और दिनचर्या उसी के अनुकूल रक्खे, और जो कुछ करे उसे डायरी में लिखता रहे। समय-समय पर उसे देखकर अपनी त्रुटियों और भूलों पर पश्चात्ताप करता रहे जिससे वे भूलें फिर दुहराई न जा सकें। इस समय-विभाग के सदैव अनुकूल कार्य्य करने से मनुष्य की आयु बढ़ती है और वह संसार में अधिक से अधिक कार्य्य करता है।

स्वाध्याय

स्वाध्याय-शीलता श्रेष्ठ गुण है। यदि आदमी रोजाना एक घण्टा स्वाध्याय करे तो अनुभव के आधार से कहा जा सकता है कि वह एक घण्टे में २० पृष्ठ तक पढ़ सकता है और वर्ष में १८ जिल्दें चार-चार सौ पृष्ठ के ग्रन्थों को समाप्त कर सकता है—चार्ल्स सी० फ्रौस्ट नाम का एक विद्यार्थी अमरीका की एक (Charles C. Frost) यूनीवर्सिटी में पढ़ता था। माता-पिता की सहायता न रहने से उसे यूनिवर्सिटी छोड़नी पड़ी। उसने वरमौंट (Vermont) अपने निवास स्थान पर जाकर जूते बनाने का पेशा किया परन्तु अपने रुचिकर विषय गणित के अभ्यास और अध्ययन के लिये दैनिक एक घण्टे का समय अपने समय विभाग में रखकर उसी के अनुसार कार्य करना शुरू किया। कुछेक वर्षों ही में वह अमरीका का एक प्रसिद्ध गणितज्ञ बन गया। स्वाध्याय से साधारण ज्ञान की वृद्धि होती है। मनुष्य कूप-मण्डूकवत् नहीं रहता। अनेक विद्याएं उसे आ जाती हैं; और ग्रन्थों द्वारा जमाने की नीच-ऊँच गर्म-सर्द का उसे ज्ञान हो जाता है। उन से उस के चरित्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और उसकी संगत का सुधार होता है।

ब्रह्मचर्य के लिये स्वाध्याय-शीलता अनिवार्य है।

खाली न रहना

आलस्य और प्रमाद मनुष्य के लिये घातक हैं। बुरे विचार उसी समय उसके दिल में आते हैं जब वह खाली रहा करता है। कहावत है कि खाली मन शैतान का कारखाना (Empty mind is devil's workshop) होता है। विद्यार्थी को पढ़ने-लिखने, खेलने आदि किसी न किसी काम में अपने को लगाये रखना चाहिये, जिससे उसका मन चंचल न हो।

तीसरा अध्याय

पहला सर्ग

ब्रह्मचर्य

पुराने जमाने में विद्यार्थी-जीवन का नाम ब्रह्मचर्याश्रम था। अर्थात् जो विद्यार्थी है उसे ब्रह्मचारी होना चाहिये और जो ब्रह्मचारी है उसे विद्यार्थी। परन्तु वर्तमान सभ्यता और देश में बाल विवाह के प्रचार से यह सुन्दरी नियम प्रचलित नहीं रहा। परन्तु यदि जाति के बालकों को अच्छे और पुष्ट शरीर और मस्तिष्क वाला बनाना इष्ट हो, जैसा होना चाहिए, तो उपर्युक्त नियम पुनः प्रचलित करना पड़ेगा। अर्थात् २४ वर्ष तक युवकों को विवाह की बात सोचनी भी नहीं चाहिये।

ब्रह्मचारी

ब्रह्मचारी दो शब्दों से मिलकर बनता है ब्रह्म+चारी। बृह धातु से ब्रह्म बनता है। बृह के अर्थ बढ़ना, वृद्धि करना, उन्नति करना, प्रगति विकास और व्यापना। इन्हीं अर्थों के आधार से ब्रह्म

शब्द के अर्थ ईश्वर, बड़ा, वेद, विद्वान्, अध्ययन आदि के हैं। चारी का है चलने वाला। ब्रह्मचारी में आये ब्रह्म के अर्थ वृद्धि या विकास और अध्ययन के हैं अर्थात् ब्रह्मचारी वह है जो अपने शरीरादि की वृद्धि करता हुआ विद्या का अध्ययन करे अर्थात् शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की उन्नति करे।

शारीरिकोन्नति

शारीरिक उन्नति का भाव यह है कि शरीर में उत्पन्न हुए रक्तादि सुरक्षित रहते हुए वृद्धि करें जिससे शरीर पुष्ट हो। सर्वश्रेष्ठ रक्त जो शरीर में बनता है वीर्य्य कहलाता है। वीर्य शब्द ही साधारण बोलचाल में बीज कहलाता है। यही वीर्य जब स्त्री के शरीर में उत्पन्न होता है तब रज कहलाता है। जिस प्रकार भूमि में पड़ने से बीज अंकुरित होकर पौदा (वृक्ष) बन जाता है इसी प्रकार रज रूपी भूमि में वीर्यरूपी बीज पड़ कर मनुष्य रूपी पौदे की उत्पत्ति करता है।

वीर्य्य की उत्पत्ति

किया हुआ भोजन परिवर्तनों के बाद, दो प्रकार के रसरूप में परिवर्तित हो जाता है:—[१] प्रसाद (शुद्ध) [२] किद (मल)। इनमें से संख्या २ तो मूत्र हो जाता है और पहला व्यान वायु द्वारा शरीरस्थ रस (Simples) में पहुंचता है और शरीरस्थ रस की अग्नि [illegible] तप कर तीन भागों में विभक्त हो जाता है:—

(२) [१] मलभाग (कफ) [२] स्थूल रस [३] सूक्ष्मरस=रक्त। इनमें से सं० १ शरीरस्थ कफ में सं० २ शरीरस्थ रस में मिल जाते हैं। सं० ३ रक्त के स्थान यकृत और प्लीहा में पहुंचता है और शरीरस्थ अग्नि से तप कर फिर तीन भागों में बँट जाता है:—

(३) [१] मलभाग (पित्त) [२] स्थूलभाग=रक्त [३] सूक्ष्म-भाग (मांस) इनमें सं० एक और दो तो शरीरस्थ पित्त और रक्त भाग में शामिल हो जाते है। सं० ३ फिर तप कर तीन भागों में बँट जाता है:—

(४) [१] मल भाग (नासिका और नेत्र के मल), [२] स्थूल-भाग=मांस, सूक्ष्म भाग=मेद। इनमें से सं० १ व २ तो शरीर में अपने-अपने स्थानों पर चले जाते हैं, सं० ३ तप कर तीन भागों में बट जाता है।

(५) [१] मल भाग=स्वेद [२] स्थूल भाग=मेद [३] सूक्ष्म भाग=अस्थि सं० १, २ शरीर में चले जाते हैं, सं० ३ फिर तीन भागों में बँट जाता है :—

(६) [१] मल भाग (केश) [२] स्थूल भाग, (अस्थि) [३] सूक्ष्म भाग=मज्जा सं० १, २ अपने-अपने स्थान पर पहुंच जाते हैं और सं० ३ के फिर पूर्ववत् तीन भाग हो जाते हैं:—

(७) मल भाग (न्यून व त्वचा के स्नेह) [२] स्थूल भाग=मज्जा [३] सूक्ष्म भाग=वीर्य। यहां पहुंच सं० ३ दो भागों में बँट जाता है :—

(८) [१] स्थूल भाग=वीर्य [२] सूक्ष्म भाग=ओज।

(६) ओज दो प्रकार का होता है:—[१] पर (सूक्ष्म) [२] अपर (स्थूल)।

ओज की मात्रा

एक आदमी के शरीर में सं० १ केवल आठ बूँद होता है और सं० (२) दोनों हाथों से बनाई हुई अंजलि का आधा जब वीर्य ओज बनने तक सुरक्षित रहता है तब इसमें ओज के

ब्रह्मचारी के चेहरे आदि पर चमक और तेजस्विता आ जाती है। पर ओज का स्थान हृदय है। अपर ओज स्त्री-पुरुषों के अंगों में पाया जाता है :—

वीर्य्य और ओज में अन्तर

(१०) वीर्य में रजोगुण रहता है परन्तु ओज में सत्व गुण आ जाता है इसलिए ओजस्वी ब्रह्मचारी विषय वासना की इच्छा से ऊपर हो जाता है। यही इन दोनों में मौलिक अन्तर है।

वीर्य्य कब उत्पन्न होता है

युवकों में १६ वर्ष से पहले वीर्य्य और युवतियों में १२ वर्ष से पहले आर्तव (रज) की उत्पत्ति नहीं होती। सोलह वर्ष से पहले जो श्वेत स्राव युवकों में होता है वह शुक्र नहीं होता। किन्तु अष्टीला ग्रन्थि का स्राव वा ऐलब्यूमन आदि होता है उसमें शुक्राणु नहीं होते हैं।

वीर्य्य का स्थान

पश्चिमी लेखक वीर्य्य का स्थान प्रायः अंडकोश कहा करते हैं; परन्तु पूर्वी लेखक उसे समस्त शरीर में फैला हुआ बतलाते हैं। एक जगह लिखा है कि जैसे दुग्ध में घृत अथवा ईख में रस छिपा रहता है इसी प्रकार समस्त शरीर में वीर्य्य रहता है।*

वीर्य्य बनने में कितना समय लगता है ?

भोजन से बने हुए रस से वीर्य्य बनने में एक मतानुसार २४ घण्टे, दूसरे मतानुसार एक सप्ताह और तीसरे मतानुसार तीस (३०) दिन ६ घड़ी लगती है। रस से रक्त, रक्त से मांस

---

*यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा। एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम्॥

आदि प्रत्येक के बनने में ५ दिन से कुछ अधिक समय लगता है।×

इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में भी एक मास के अन्दर वीर्य्य बनने का विधान किया गया है और यह भी कहा गया है कि यही वीर्य्य पुरुषों में वीर्य्य और स्त्रियों में आर्तव रज कहलाता है।❀

वीर्य्य का मूल्य

यह अनुमान किया जाता है कि यदि एक मन भोजन की मात्रा हो तो उससे एक सेर रुधिर बनेगा और एक सेर रुधिर से दो तोला वीर्य्य× जिसका तात्पर्य यह है कि यदि शरीर से एक तोला वीर्य्य निकल जावे तो उसका अर्थ यह है कि ४० तोला रक्त कम हो गया अथवा उतनी शक्ति जाती रही जो आध सेर खून के अन्दर होती है और इतनी शक्ति ४० दिन के

× धातौ रसादौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रमते रसः। अहोरात्रास्त्रयं पंच सार्द्धं दण्डं च तिष्ठति ॥ भोज ॥

❀ एवं मासेन रसः शुक्रो भवति पुंसां स्त्रीणां चार्तवमिति ॥ (सुश्रुत संहिता)

× "One ounce of the seminal fluid is estimead by some authorities as being worth forty ounce of blood and by others being equivalent in energy to sixty ounce of blood, but though these estimates are naturally more or less uncertain or doubtful yet we know positively that this life bearing fluid is the richest secretion of the entire body and that it is indispensable to the development and maintenance of all the essential attributes of perfect manhood." (Encyclopaedia of physical culture by Macfudden an American physiculturist.)

भोजन से प्राप्त हुआ करती है। एक वार के वीर्य्यपात से १० दिन की आयु भी मनुष्य की घट जाती है।

ब्रह्मचारी के दो भेद

ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं एक ऊर्ध्वरेता [२] अमोघ वीर्य्य। इन्हीं को नैष्ठिक (आजीवन) और उपकुर्वाण भी कहते हैं। पहले प्रकार के ब्रह्मचारी वे होते हैं जो समस्त आयु ब्रह्मचर्य्य के साथ व्यतीत करते हैं जैसे ऋषि दयानन्द या पुरुष-श्रेष्ठ न्यूटन। दूसरे वे जिन्होंने २४, ३६ अथवा ४८ वर्ष की आयु पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य रक्खा जिससे वे अमोघवीर्य्य हो जाते हैं। अमोघवीर्य अपरिमित वीर्यवान् को कहते हैं जिनका वीर्य्य कभी निष्फल नहीं जाता। ब्रह्मचर्य्यकाल को पूर्णतया मर्यादा के साथ पालन करने ही से मनुष्य अमोघवीर्य्य हुआ करता है। ब्रह्मचर्य्य के इन दोनों भेदों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों प्रकारों में वीर्य्य-रक्षा अनिवार्य्य है। जो पुरुष इसमें चूक करते हैं उनकी गणना इन दोनों प्रकारों में से किसी में भी नहीं हो सकती।

वीर्य्य की दो प्रकार की गति

वीर्य्य की दो गति होती हैं [१] ऊर्ध्व गति [२] अधोगति। ऊर्ध्व गति का भाव यह है कि वीर्य्य उत्पन्न होकर शरीर में रक्त के माध्यम से जज्ब हो जावे और अधोगति का यह आशय है कि वीर्य्य शरीर से निकल जावे। ये दोनों बातें अच्छी तरह से समझी जा सकें इसलिये इनसे सम्बन्धित बातों का यहाँ उल्लेख किया जाता है :—

ऊर्ध्व गति

प्रारम्भ में जब शरीर में वीर्य्य बन जाता है और नष्ट

होना शुरू नहीं होने पाता तब शरीरस्थ रक्त में मिल कर सारे शरीर में फैल कर समस्त शरीर को प्रभावित कर देता है। उसी के फलस्वरूप युवक के डाढ़ी और मूछों के बाल निकलने लगते हैं, उसकी आवाज़ में तब्दीली हो जाती है, और उसकी प्रायः सभी बातें बदल-सी जाती हैं। डाक्टर कोविन ने भी एक जगह इसी प्रकार की बातें वर्णन की हैं। =इससे समस्त शरीर बलवान् होता है, मस्तिष्क में शक्ति का विकास होता है। हृदय उमंग और उत्साह से भरने लगता है और चेहरे से तेजस्विता प्रकट होने लगती है। यह है वीर्य्य की ऊर्ध्व गति और ब्रह्मचर्य का निष्कंटक मार्ग।

अधोगति

जब युवकों के अन्दर कुछेक ऐसी बातों का समावेश हो जाता है जिनसे वीर्य्य की उपर्युक्त ऊर्ध्वगति नहीं होने पाती, तब वीर्य्य को शरीर से किसी न किसी प्रकार निकालने के लिए युवक बाधित से हो जाते हैं और उसके निकलने से शरीर और उसमें होने वाली शक्तियों का विकास न होकर ह्रास होने लगता है। वीर्य्य जब ऊर्ध्व गति के मार्ग पर होता है तब उसके अन्दर एक विशेष प्रकार का गाढ़ापन होता है परन्तु प्रतिकूल

= In the boy of 16 or 18 who has lived and does live a pure life, whose sexular organism has just awakened to life when this secretion of minute cells reaches the Vasa Deferentia, it is reabsorbed into the blood, directed into tho nerve channels of the system and as a result, his voice is altered, becoming more full and deep, hair begins to show on his face his figure is rounded out. His manner of thought and habit are altered and he takes on anew life. (Dr. Cowen quoted in the self pollution by H. S.Gambers p. 16 &17.)

परिस्थिति हो जाने से वह गाढ़ापन जाता रहता है और उसके स्थान में वीर्य्य में पतलापन आ जाता है और तभी इसकी प्रवृत्ति अधोगति की ओर हो जाती है।

वह प्रतिकूल परिस्थिति क्या है

वीर्य्य जिस प्रतिकूल परिस्थिति के हो जाने से अधोगति की ओर प्रवृत्त हो जाता है वह परिस्थिति दुष्ट भोजन और दुष्ट विचार ही से आया करती है।

दुष्ट भोजन

वह भोजन, जो ब्रह्मचर्य्य का बाधक है और जिससे वीर्य्य की ऊर्ध्वगति नहीं होने पाती, क्या है ? यही बात यहां बतलाई जाती है। बहुत खटाई, अधिक मात्रा में लाल मिर्च और गर्म मसाला या बहुत सी चटपटी चीजें जिस भोजन में शामिल हुआ करती हैं, वह दुष्ट भोजन कहलाता है। मांस, अण्डा, चाय, काफी, तम्बाकू, शराब, भंग, चरस आदि की गणना भी दुष्ट भोजन के अन्तर्गत ही है। डाक्टर कोवन, और डाक्टर बरनार मैक़फ़ेडन ने भी इसका समर्थन किया है*।

---

* As regards the wrong dietetic habits, I cannot do better justice to it than by quoting the observations of two famous writers on this subjeet.

I. Says Dr. Cowen:—"The large quantify of fresh meat, together with eggs, fish, pepper, spices, tobacoo, tea, coffee, chocolate, bread made from fine wheat flour—all these things have a direct influence on the abnormal exercise of the sexual system. Tea, coffee, tobacco, alcoholic liquors, and animal food are all

इनमें से चाय, तम्बाकू, शराब आदि उत्तेजना पैदा करके वीर्य्य को पतला करती हैं और मैदे की रोटी आदि क़ब्ज़ पैदा करती है। इस प्रकार क़ब्ज़ हो जाने से पाखाना साफ़ नहीं होता है। जब मनुष्य मल निकालने के लिये देर तक बैठकर बल करता है तो उससे बड़ी आंतों (Large Intestine) में कम्पन उत्पन्न होता है और इस कम्पन से शुक्राशय (Seminal vesicele) को भी धक्का लगता है जिससे वीर्य्य अपनी जगह छोड़कर बाहर निकलने लगता है। इसलिये ऐसे भोजनों से सदैव युवकों को बचना चाहिये। एक और जगह एक विद्वान् ने कहा है कि जब मनुष्य बहुत खटाई, इमली और

---

stimulating or narcotic in their nature; and whatever is taken into the body of narcotic or stimulating nature irritates the nervous system but specially the nerves of the sexual system, and through the reflex action on the base of the brain amativeness is inflamed and excited and in this way come lustful desire."

II. Says Bernarr Macfadden:—"Meat and eggs being rich in protein should not be used too freely, and if the assimilation is specially poor it may be better to avoid them entirely for a time""Not only Alcoholic drinks, but even tea and coffee should be avoided, Pepper, hot sauces and condiments of all kind are specially objectonable. The things that you can eat and enjoy raw, particularly fruits green salads, nuts and so forth, should be used extensively, in the diet." (Self pollution by H, S. Gambers P. 39 to 41)

चटनी आदि खाता है तब उससे वीर्य्य दूषित होने लगता है। उसने यह भी लिखा है कि यदि मनुष्य ऐसी चीजों का खाना नहीं छोड़ते तो उन्हें यह विचार छोड़ देना चाहिये कि वे शुद्ध वीर्य्य या उत्पादक शक्ति रख सकते हैं।×

शराब में अलकोहल होता है। मामूली शराब में १० फीसदी, ह्विसकी और बरांडी में ४० से ६० फीसदी तक। यह शरीर में पहुँच कर रुधिर, नाड़ी और मस्तिष्क के कार्यों में विघ्न डाल देता है। गोलकों को बिगाड़ कर शरीर के भीतर सूजन पैदा कर देता है।

तम्बाकू से भयानक हानि

२४ घण्टे में जितना तम्बाकू साधारण रीति से एक मनुष्य पी लिया करता है, उसमें जितना निकोटिन (Nicotin) नाम का एक विष होता है, उसे यदि मनुष्य एक ही बार इस प्रकार खा लेवे कि वह उसके शरीर के भीतर पहुंच जावे तो यह निश्चित है कि वह आदमी मर जावेगा। एक विद्वान् ने लिखा

×Normal semen of a healthy man is slightly alkaline in reaction hnd that the spermartozon con only live in the natural or alkaline semen. This means that, whenever you take into your system large quantities of acbiio food, you thwart the great purpose of nature. your spices, your tamarind. your chatneys and your pickles are all rich in vegetable acids and if you can not give them up, you must give up the idea of possessing healthy semen or normal sexual power. (How to build up virility by H.S. Gambers. P. 31.)

है कि बुरी आदतों में से पहली और अधिक बुरी आदत, जिससे मनुष्य की स्त्री-प्रसंग-सम्बन्धी योग्यता में बट्टा लगता है, तम्बाकू पीने की है+। फिर एक दूसरी जगह उसी विद्वान् ने लिखा है कि डाक्टरों के नजदीक तम्बाकू ही मुख्य वस्तु है जिससे मनुष्य सन्तान पैदा करने के अयोग्य हो जाता है। इसलिये यदि तुम पुंस्त्व को रखना चाहते हो तो तम्बाकू पीने की आदत छोड़ दो×।

दूसरा सर्ग

ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित कुछ और आवश्यक बातें

कुछेक सदैव स्मरण रखने और ध्यान योग्य बातों का यहां उल्लेख किया जाता है। १—यदि इच्छा रखते हुए भी, कि ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन किया जाय, किसी नवयुवक के भीतर काम-विकार उत्पन्न हो और जी चाहने लगे कि उत्पन्न वीर्य्य का नाश किया जावे तो उसे निम्न उपायों में से किसी

+The first and the most important of all the evil habits that cause sexual weakness is smoking......The active principle of tobacoo is necotine which in its pure form is a terrible poison. (How to build up Virility by H. S. Gambers P. 28. 29)

×To the medical man tobacco is known as an anaphrodissiac ie the agent for pressing down the sexual desire and lowering the sexual powers,and without doubt,tobacco is in most cases, chief cause of functional weakness and impotence. If you have the least regard for your powers of manhood, give up the use of tobacco entirely. (P. 29)

एक-दो का आश्रय लेना चाहिये :—

(क) शीतल जल से, चित्त के शान्त हो जाने तक, शिर को बराबर धोते रहना।

(ख) बहुत सा ठंडा पानी पी डालना।

(ग) अनिच्छा पर भी यत्न करके मूत्र त्याग करना और मूत्रेन्द्रिय को भले प्रकार ठंडे जल से तर कर देना।

(घ) ईश्वर-चिन्तन में लग जाना और प्राणायाम करते हुए ईश्वर का "रुद्र" नाम जपना।

(च) शरीर के नश्वर होने और संसार की असारता का बार-बार स्मरण करना।

(छ) दुखी व्यक्तियों और श्मशान आदि का बार-बार चिन्तन करना।

(ज) किसी आश्चर्य-वर्धक खेल में लग जाना या ऐसी ही कोई पुस्तक पढ़ने लगना।

(झ) लुहार की धौंकनी की तरह जल्दी-जल्दी ५ मिनट तक श्वास लेना और निकालना।

(ट) ३, ४ फरलांग दौड़ना या ५०, ६० बैठक कर डालना।

(ठ) उपवास शुरू कर देना और चित्त के शान्त होने तक जारी रखना।

नोट—इनमें से किन्हीं भी एक-दो बातों का आश्रय लेकर उन्हें पूर्ण रीति के साथ कर डालने से चित्त शान्त हो जाया करता है।

(ड) विशेष अवस्थाओं में, जब उपर्युक्त उपायों के काम में लाने से भी, विषय वासना कम न हो तो एक इलाज इसका यह भी है—सेर भर बर्फ को एक लम्बे कपड़े की ४, ५ तहों में रख कर उसे पहले पीठ की ओर रीढ़ की हड्डी के सबसे

निचले भाग पर रक्खो और ५ मिनट तक रक्खा रहने दो। उसके बाद उसे गरदन पर और फिर गरदन के ऊपर शिर के पिछली ओर लगभग १० मिनट तक रक्खो। इससे उत्तेजना दब जायेगी। बर्फ फिर इस्तेमाल किया जा सकता है।

२ - स्वप्न-दोषादि प्रमेह की प्रारम्भिक अवस्था में निम्नांकित वस्तुएँ औषधि-रूप में, काम में लानी चाहिएँ।

(क) बरगद का ताजा दूध प्रातः और सायं दोनों समय पांच बूंद से शुरू करके एक बूंद प्रति सप्ताह बढ़ाते हुए नौ बूंद तक ६ सप्ताह तक इस्तेमाल करना चाहिये।

(ख) अथवा पाँच तोले बबूल की हरी फली (सेंगरी) लो और उन्हें टुकड़े-टुकड़े करके साये में सुखा लो, जब बिलकुल सूख जावे तब उसे खूब बारीक पीस कर चूर्ण तैयार कर लो। उस चूर्ण को बरगद के दूध में एक सप्ताह तक भिगो रक्खो। उसके बाद उसे साये ही में सुखा डालो और फिर सम-मात्रा में असगन्ध के चूर्ण में उसे मिला लो। बस औषधि तैयार हो गई। अब इसमें से एक-एक माशा सुबह-शाम गाय के दूध के साथ खा लिया करो। इससे प्रमेह दूर होता है और वीर्य्य की वृद्धि होती है।

३—कभी-कभी धूप में या आग के सामने अधिक बैठने से वीर्य्य-रक्षा में बाधा पहुंचती है। जब कभी ऐसी सूरत आ जाय तो जननेन्द्रिय को एक दो बार अधिक ठंडे जल से स्नान कराना चाहिये। स्नान का तात्पर्य यह है कि शिस्न और उसके आस-पास का १० अंगुल परिमित स्थान शीतल जल से खूब तर कर देना। ८ दिन तक बराबर इस प्रकार स्नान से स्वप्न-दोषादि भी दूर हो जाते हैं।

तीसरा सर्ग

दुष्ट विचार

वीर्य्य की अधोगति के दो कारण इससे पूर्व बताये जा चुके हैं। (१) दुष्ट भोजन (२) दुष्ट विचार। दुष्ट भोजन का ऊपर उल्लेख हो चुका है। दुष्ट विचार की बात यहां कही जाती है:—स्त्रियों का स्मरण, उनके रूपादि का वर्णन, उनके साथ खेलना, उनकी ओर देखना, उनसे एकान्त में बात-चीत करना, विषय भोग के संकल्पों का बार-बार मन में उठना, स्त्री-प्राप्ति के लिए यत्नवान् होना तथा साक्षात सम्भोग—इन सबको विद्वानों ने मैथुन ही कहा है।×

दुष्ट विचार का प्रभाव

जब मनुष्य के भीतर उपर्युक्त आठ बातों में से किसी एक से भी सम्बधित विचार उत्पन्न होते हैं तो उन्हीं विचारों को दुष्ट विचार कहा है। ये दुष्ट विचार समय-समय पर जब मनुष्यों के भीतर उठते हैं तो इनका वीर्य्य पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है और इस प्रकार के इन विचारों के प्रभाव से वीर्य्य पतला होना शुरू हो जाता है और वीर्य्य-सम्बन्धी समस्त रोगों का प्रारम्भ इसी वीर्य्य के पतले होने से हुआ करता है। इसलिए आवश्यक है कि विषय वासना की ओर

× स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्य्यमेतदेवाष्ट लक्षणम्॥

मनुस्मृति में भी इसी प्रकार की बात कही गई है।

प्रवृत्त करने वाले विचारों को मन में उत्पन्न ही न होने दिया जावे।

दुष्ट विचारों की उत्पत्ति के कारण

इनके उत्पन्न होने के प्रायः दो कारण होते हैं। एक अश्लील और उत्तेजनोत्पादक ग्रन्थों का अध्ययन, दूसरा कुसंगति। जिसमें अश्लील खेलों, सिनेमा आदि का देखना भी शामिल है। इनमें से किसी एक या दो कारणों के उपस्थित होने और बने रहने से मनुष्य के भीतर दुष्ट विचारों का जन्म हुआ करता है।

एक शंका और उसका समाधान

उपर्युक्त आठ बातें जिन्हें मैथुन कहा गया है यदि सर्वदा निषिद्ध ठहराई जायें तो फिर मनुष्य गृहस्थ धर्म का पालन किस प्रकार कर सकता है? इस शंका का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसका समाधान यह है- (१) प्रथम तो यह ग्रन्थ विद्यार्थी-जीवन से सम्बन्धित है, इसलिये इसमें गृहस्थाश्रम की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। (२) द्वितीय जो गृहस्थी हैं उनके भीतर विषय वासना के विचार बार-बार उत्पन्न नहीं होते क्योंकि इच्छा और आकांक्षा अप्राप्त वस्तु की हुआ करती है। गृहस्थाश्रम में स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर रहते हैं और इसीलिए दोनों एक दूसरे को प्राप्त हैं। फिर उनमें, अप्राप्ति से जो इच्छा उत्पन्न हुआ करती है उसके लिए कोई स्थान ही नहीं है। इसके सिवा जो गृहस्थ पुरुष और स्त्री इस आश्रम में रहते हैं और नियम के साथ गृहस्थ धर्म के पालन की व्यवस्था रखते हैं उन्हें धर्म शास्त्रकारों ने ब्रह्मचारी ही कहा है।×

×ऋतावृतौ स्वदारेषु संगतिर्या विधानतः।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम्। (याज्ञवल्क्य)

इस सम्बन्ध में सुकरात की शिक्षा

एक व्यक्ति ने यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् सुक़रात से पूछा कि स्त्री प्रसंग कितनी वार करना चाहिए। सुक़रात ने उत्तर दिया कि जीवन भर में एक वार। दुबारा पूछने पर उत्तर मिला कि वर्ष में एक वार। यदि कोई इससे भी शान्त न हो, ऐसा प्रश्न करने पर सुक़रात ने कहा कि महीने में एक वार। उससे फिर पूछा गया कि यदि कोई इससे भी शान्त न हो, तो सुक़रात ने उत्तर दिया कि पहले उसे कफ़न आदि लाकर घर में रख लेना चाहिये, उसके बाद जो इच्छा हो करे।

कीथ की शिक्षा

कीथ नामक एक विद्वान् ने वीर्य्य रक्षा के सम्बन्ध में बड़ी उत्तम बात कही है। उसे हम उसी के शब्दों में बतला देना चाहते हैं।

"This Seed (वीर्य्य) is a marrow your bones, food to your brains, oil to your joints, and sweetness to your breath and if you are a men you should never lose a drop of it until you are fully thirty years of age, and then only for the purpose of having a child which shall be blessed from Heaven and ready one of the inmates of the Kingdom of Heaven by being born again" (Melvil Keith)

अर्थात् यह वीर्य्य तुम्हारी हड्डियों के भीतर का गूदा (मज्जा), तुम्हारे मस्तिष्क का भोजन, तुम्हारे जोड़ों के लिए तेल और तुम्हारे श्वास का मिठास है। यदि तुम मनुष्य हो तो तुम्हें ३० वर्ष× की आयु प्राप्त करने से पहले उसकी एक

× अबिसीनिया में ३० वर्ष से कम आयुवालों की सन्तानों को वहां के पुरुष नियमानुसार जंगली जानवरों को खिला देते हैं।

बूंद भी नष्ट नहीं होने देनी चाहिये और वह भी उस समय केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये। उस समय असंदिग्ध रीति से स्वर्गीय प्राणधारियों में से एक आकर तुम्हारे घर में जन्म लेगा।

वात्स्यायनाचार्य और युवावस्था

वात्स्यायन मुनि ने १६ से ७० वर्ष तक की आयु को युवावस्था कहा है:—

"आषोडशात्सप्ततिवर्ष पर्यन्तं यौवनम्"। (वात्स्यायनः) एक समय था जब यहां ७० वर्ष तक की आयु युवावस्था में परिगणित होती थी, परन्तु आज थोड़े पुरुषों की समस्त आयु ७० तक पहुंची है। अधिकतर यहां के मनुष्य बुढ़ापे से पहले ही अपना जीवन-संग्राम समाप्त कर देते हैं। वेद की आज्ञा है कि बुढ़ापे से पहले मनुष्य को नहीं मरना चाहिये×।

वीर्य का मन के अधीन होना

एक जगह कहा गया है कि मनुष्य के चित्त (मन) के अधीन उसका वीर्य्य होता है और वीर्य्य के अधिकार में उसका जीवन। इसलिये मन और वीर्य दोनों की तत्परता से रक्षा करनी चाहिये★ यदि मन में दुष्ट विचार न आवें तो ऐसा मन वीर्य का रक्षक ही समझा जा सकता है:—

वीर्य्य-नाश के भयानक परिणाम

डाक्टर स्मिथ (Dr. Smith) ने राजयक्ष्मा (तपेदिक) के एक सहस्र रोगियों की इस उद्देश्य से जांच की कि मालूम किया

× मा पुरा जरसो मृथाः ॥ अथर्ववेद ॥
अर्थात् बुढ़ापे से पहले मत मर।

★चित्तायत्तं नृणां शुक्रं शुक्रायत्तं च जीवनम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥

जावे कि उनके इस जीर्ण ज्वर होने के कारण क्या-क्या हैं। उनकी जाँच का फल यह निकला:—

१८६ अति स्त्री-प्रसंग से
१८३ हस्त-मैथुन से
२२० प्रमेह से
४११ अन्य कारणों से
———
१०००

ये अंक प्रकट करते हैं कि एक हजार में ५८६ रोगियों के रोग का कारण वीर्य्य-नाश था।

भुवाली सैनेटोरियम की एक घटना

नैनीताल के जिले में भुवाली नामक स्थान पर एक सैनेटोरियम, तपेदिक के रोगियों के लिए है। यह स्थान मेरी कुटी से जो रामगढ़ में थी, ६ मील के फासले पर है। इस सैनेटोरिम में ६-७ वर्ष हुए लगभग १६२६ ई० में एक विद्यार्थी, जिसकी आयु केवल १८ वर्ष की थी, प्रविष्ट हुआ। यह विद्यार्थी, इन्ट्रेन्स (School final) की परीक्षा देने वाला था। प्रवेश-तिथि से ३ मास के भीतर ही इसकी मृत्यु हो गई। इसके तपेदिक होने का कारण भी यही था कि उसने हस्त मैथुन से समस्त उत्पन्न हुआ वीर्य्य नष्ट कर डाला था।

—०—

चौथा अध्याय

पहला सर्ग

पुरुषार्थमय जीवन कर्मठ जीवन है

विचारों में अपवित्रता न आने पावे इसके लिए नवयुवकों को

अपना जीवन पुरुषार्थ-मय बनाना चाहिये। जब मनुष्य आलस्य और प्रमाद के वशीभूत होकर निकम्मा और खाली रहने लगता है तभी बुरे विचार उसके भीतर उत्पन्न होने लगते हैं। एक विद्वान् ने जैसा कि कहा जा चुका है, ठीक ही कहा है कि मनुष्य का खाली मस्तिष्क शैतान का कारखाना होता है।* इस खाली रहने को निषिद्ध समझ कर कुछ न कुछ करने का अभ्यास रखना चाहिये।

ऐतरेय ब्राह्मण और पुरुषार्थ की शिक्षा

पुरुषार्थ के सम्बन्ध में बड़े उत्तम वाक्य हमें एक जगह ऐतरेय ब्राह्मण में मिलते हैं। उन्हें हम पाठकों के लाभार्थ यहाँ उद्धृत करते हैं :—

नानाश्रांताय श्रीरस्ति। पापो नृषद्वरो जनः।
इन्द्र इच्चरतः सखा। चरैवेति चरैवेति॥ १॥

अर्थात्—श्रम किये विना श्री प्राप्त नहीं होती। सुस्त मनुष्य पापी होता है। पुरुषार्थी का मित्र ईश्वर है। प्रयत्न करो, प्रयत्न करो।

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः।
चरैवेति चरैवेति॥ २॥

अर्थात्—जो चलता है उसकी जांघें पुष्ट होती हैं, फल मिलने तक प्रयत्न करने वाले का आत्मा प्रभावशाली होता है। प्रयत्नकर्ता के पाप माव मार्ग ही में मर जाते हैं। प्रयत्न करो, प्रयत्न करो।

---

*Empty mind devils workshop.

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः ॥
चरैवेति चरैवेति ॥ ३ ॥

अर्थात्—जो बैठता है, उसका भाग बैठता है, जो खड़ा होता है उसका भाग खड़ा होता है। जो सोता है उसका भाग सो जाता है*। जो चलता है उसका भाग भी चलता है। इसलिए प्रयत्न करो, प्रयत्न करो।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥
चरैवेति चरैवेति ॥ ४ ॥

अर्थात्—सोजाना कलियुग है आलस्य छोड़ना द्वापर, उठना त्रेता और पुरुषार्थ करना सतयुग है। पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ करो।

चरन्वै मधु विंदति चरन्स्वादु मृदुवरम् ।
सूर्य्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तंद्रयते चरन् ॥
चरैवेति चरैवेति ॥ ५ ॥

अर्थात्—मधुमक्खी चलकर मधु प्राप्त करती है, पक्षी भ्रमण करने ही से मीठा फल प्राप्त करते हैं। सूर्य की जो शोभा है वह उसके निरलस भ्रमण ही से है। इसलिए पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ करो। (ऐत० ब्रा० ७। १५)

(*) अंगरेजी में भी इसी प्रकार की कहावत है :—
He who sleeps his fortune sleeps.

तपस्वी जीवन

पुरुषार्थ करते हुए मनुष्य को अपना जीवन ऐसा बनाना चाहिए जिससे वह सरदी, गरमी और कठोरताओं को सहन करने का अभ्यासी हो जावे। इन कठोरताओं के सहन करने का नाम ही तप है। तैत्तिरीयारण्यक में (१) ऋतु=नियमानुकूल जीवन बनाना (२) सत्य=सत्याचारी बनना (३) श्रुत=स्वाध्याय-शील बनना (४) शान्त=चंचलता रहित होना (५) दम=इन्द्रिय निग्रह (६) शम=मनोनिग्रह (७) दान=दूसरों की सहायता करना (८) यज्ञ=शुभ कर्म करना और (९) भूर्भुवः स्वः=सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर की उपासना जिन साधनों से काम में लाई जाती है उन सबको तप कहा है। नवयुवकों को इन तपों को धारण करके अपना जीवन तपस्वी बनाना चाहिए। तब उनके पुरुषार्थ का मुंह उलटे मार्ग की ओर न हो सकेगा और वे सफल मनोरथ हो सकेंगे। इसी पुरुषार्थशीलता और तपस्वी जीवन से उनके विचार शुद्ध रह सकेंगे और उनमें दुष्टता का समावेश न हो सकेगा।

वेद और पुरुषार्थ

वेद में भी पुरुषार्थ की महत्ता प्रकट करते हुए एक जगह लिखा है कि "जो जागता है ऋचायें उसी को चाहती हैं, जो जागता है साम के मन्त्र उसी की ओर चलते हैं। जो जागता है सोम (ईश्वर) उसी का मित्र (सहायक) बनता है+। स्पष्ट है कि वेद पुरुषार्थ की कितनी उत्तम शिक्षा दे रहे हैं। इसके

+यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥
ऋग्वेद ५। ४४। १४

बतलाने की जरूरत नहीं है कि जागना पुरुषार्थ और सोना आलस्य और प्रमाद का द्योतक है। फिर एक जगह लिखा है कि जो मनुष्य पुरुषार्थ करके अपने को थका नहीं लेते वे ईश्वर की दया के पात्र नहीं बनते★। फिर एक और जगह लिखा है कि परिश्रम ही से यज्ञकर्त्ता को ईश्वर का संरक्षण प्राप्त होता है।✲

दूसरा सर्ग

प्रारब्ध

पुरुषार्थमय जीवन की शिक्षा देने पर कुछेक शंकायें कुछ सज्जनों के हृदयों में उठा करती हैं। उनमें से सबसे पहली बात प्रारब्ध है। अर्थात् लोग कह उठा करते हैं कि "हुई है वही जो राम रचि राखा।" अर्थात् जो कुछ किस्मत में ईश्वर ने लिख दिया है वही होगा फिर पुरुषार्थ करने की बात व्यर्थ है। असलियत यह है कि इस प्रकार की शंका करने वाले प्रारब्ध क्या वस्तु है इसको नहीं समझते। मनुष्य जब कर्म करता है तो वे किए हुए कर्म तीन रूप में रहा करते हैं :-

कर्म के तीन रूप

मनुष्य जब करता है और जब तक वह कर्म-फल देने योग्य नहीं हो जाता है तब तक कर्म की पहली हालत रहती है और इस रूप वाले कर्म को क्रियमाण कहते हैं और जब कर्म पूरा होकर फल देने योग्य होकर किये हुये कर्मों के भण्डार में जमा हो जाता है तब उसे संचित कहने लगते हैं और उन्हीं संचित कर्मों में से जिस कर्म का फल मिलने लगता है उसी

★न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ॥ (ऋग्वेद ४।३३।११)

[illegible] सुन्वते यजमानस्य ॥ ऋग्वेद [illegible])

को प्रारब्ध कहने लगते हैं। अतः स्पष्ट हो गया कि प्रारब्ध मनुष्य के किये हुये कर्म ही के अनुरूप होती है। वह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो कहीं से लिख-लिखाकर मनुष्य के सिर थोपी जाती हो। प्रारब्ध बनाने वाले अपने कर्म ही होते हैं, इसीलिये सद्ग्रन्थों में पुरुषार्थ करते हुये अच्छे कर्मों के करने की शिक्षा दी गई है, जिससे उनके द्वारा अच्छा प्रारब्ध बन सके। प्रारब्ध बनाना अपने ही अधीन है। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता आप है। प्रारब्ध कहीं से बनी-बनाई आजाती है यह विचार आलसियों के मस्तिष्क की उपज है। इसे अधर्म और गिरावट का काम समझकर छोड़ देना चाहिए।

क्या मनुष्य समय के बन्धन में है?

दूसरी बात पुरुषार्थ के विरुद्ध यह कही जाती है कि समय जैसा चाहता है मनुष्य से कराता है और मनुष्य को मजबूर होकर वही करना पड़ता है, इसलिये पुरुषार्थ व्यर्थ है। यह विचार भी बोदा और निहायत बोसीदा है और इसका आविष्कार भी प्रमादियों ने ही किया प्रतीत होता है। महाभारत में युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिर ने भीष्म से अनेक प्रश्न किये थे और भीष्म पितामह ने उनके उत्तर दिये थे। शान्ति पर्व में ये प्रश्नोत्तर अङ्कित हैं। उनमें एक प्रश्न इसी प्रकरण से सम्बन्धित था।

एक प्रश्नोत्तर

युधिष्ठिर ने पूछा कि समय मनुष्य को बनाता है या मनुष्य के अधिकार में है जिस प्रकार का चाहे अपने लिये समय बना लेवे। भीष्म ने उत्तर दिया कि मनुष्य ही समय का बनाने वाला

होता है*। शुक्र-नीति में भी इसी प्रकार की शिक्षा मिलती है। एक जगह कहा है कि "आचारवान् मनुष्य समय का निर्माण किया करता है*।" फिर दूसरी जगह अंकित है कि यदि समय जैसा चाहे मनुष्य को बना दिया करता है तो फिर मनुष्य पर कर्म का उत्तरदायित्व किस प्रकार ठहर सकता है×। एक अंग्रेज विद्वान् ने भी इसी शिक्षा का समर्थन किया है। उसने लिखा है कि "समय घटनाओं का निर्माता नहीं होता किन्तु घटनाएँ उसका निर्माण किया करती हैं+। जो लोग संसार में कुछ करके अपना नाम छोड़ा करते हैं वे समय के निर्माता हुआ करते हैं। गौतम बुद्ध, शंकर और दयानन्द के जीवन इसके प्रमाण में उपस्थित किये जा सकते हैं। एक वार नेपोलियन से जब वह मिस्र का शहर इलेक्जेन्डिरिया विजय कर चुका था, किसी ने पूछा कि "यदि अवसर हो तो क्या आप मिस्र के और शहर भी फतह करेंगे?" तो वह इस प्रश्न को सुनकर आवेश में आ गया और कहा कि अवसर क्या आसमान से आवेगा? अवसर को मैं बना सकता हूं, मनुष्य के अधिकार में है कि जैसा चाहे अवसर बनावे*। आलसियों ने इसी प्रकार के अनेक

---

*कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्॥
इति ते संशयो माभूत् राजा कालस्य कारणम्॥
(महाभारत शान्ति पर्व)

*आचार-प्रेरको राजा ह्येतत् कालस्य कारणम्॥ (शुक्रनीति)

×यदि कालः कारणं हि कस्मात् धर्मोस्ति कर्तृषु॥

+Time is not the creator of events but by them created. 'Problem of time' by J. Alexander Gunn.

* नेपोलियन के वाक्यों का अंग्रेजी अनुवाद यह है:—
I make opportunity, it is man who makes opportunity.

शब्द जैसे भाग्य, शुदनी, भावी, आबोदाना, कलजुग इत्यादि घड़ रखे हैं और अपने आलस्य, प्रमाद और निकम्मेपन के छिपाने के लिये इन्हीं में से किसी एक का, जैसा अवसर देखते हैं, प्रयोग कर दिया करते हैं। इन शब्दों को आलसियों के कोश के शब्द समझ कर इनकी ओर किसी उन्नति के इच्छुक नर-नारी को ध्यान नहीं देना चाहिये।

तीसरा सर्ग

उद्देश्य और दृढ़ प्रतिज्ञा

उपर्युक्त ब्रह्मचर्य्य और पुरुषार्थमय जीवन बनाने आदि को परिमित रूप देकर सामयिक उद्देश्य बना लेना चाहिये और उद्देश्य बनाकर ईश्वर को साक्षी देते हुए दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि पूरा यत्न उनके पालन का किया जायगा और किसी दशा में भी उनके विपरीत आचरण नहीं किया जायगा। मनुष्य जब किसी बात को अपना उद्देश्य बना लेता है तो उसके सभी कामों पर नियत किये हुये उद्देश्य का प्रभाव पड़ा करता है और उससे कोई भी काम ऐसे नहीं होने पाते जो उस उद्देश्य के विरुद्ध हों। इसलिये उद्देश्य का नियत कर लेना आवश्यक है।

उद्देश्य के दो भेद

उद्देश्य नियत करते समय यह समझ लेना चाहिये कि उद्देश्य के दो भेद होते हैं:—(१) स्थिर (२) अस्थिर(सामयिक) स्थिर उद्देश्य जीवन भर का एक होता है और वह उद्देश्य है वेद के शब्दों में "अनृतात्सत्यमुपैमि+।" अर्थात् असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण करना। उपनिषद् में इसी सत्य का

+देखो यजुर्वेद १।५

नाम धर्म कहा गया है×। यह उद्देश्य मनुष्य मात्र का जीवन भर के लिये है। दूसरा अस्थिर उद्देश्य सामयिक होता है। वह सामयिक आवश्यकताओं के पूरा करने के लिये हुआ करता है। एक विद्यार्थी का उद्देश्य विशेष रीति से विद्याध्ययन होता है परन्तु एक गृहस्थ का यह उद्देश्य नहीं हो सकता। उसका तात्कालिक उद्देश्य धन कमाना है। इसी प्रकार समय समय पर यह उद्देश्य बदलता बदलता रहता है, परन्तु जिस समय का जो उद्देश्य हो उसके पालन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा उपर्युक्त भांति कर लेनी चाहिये और समय समय पर उस प्रतिज्ञा को दुहराते रहना चाहिये जिससे उसके विपरीत चलने का ध्यान ही मनुष्य के हृदय में न उठे। परन्तु इच्छा न होने पर भी मन की चंचलता उद्देश्य के विपरीत आचरण करने का प्रलोभन देने लगती है।

प्रतिज्ञाभंग की इच्छा पर विरुद्ध भावना

यदि मनुष्य के हृदय में इस प्रकार के प्रलोभन उठें तो उसे उनके विरुद्ध भावना अपने हृदय में उत्पन्न करनी चाहिये। विरुद्ध भावना का मतलब यह है कि उसे अपने भीतर सोचना चाहिये कि "मैंने ईश्वर को साक्षी देते हुए अमुक प्रतिज्ञा की थी, अब यह बड़ी लज्जा की बात है कि मैं स्वयं उसे तोड़ना चाहता हूं।" इस प्रकार की भावना से आत्मग्लानि अर्थात् अपने से घृणा होने की भावना जागृत हो जाती है और मनुष्य उस प्रतिज्ञा-भंग करने के पातक से बच जाता है।

×यो वै स धर्मः सत्यम् वै तत्॥ अर्थात् निश्चय जो वह धर्म है वही सत्य है। (बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।१४)

सत्संग

अपने उद्देश्य पर जमे रहने की भावना दृढ़ होती रहे इसके लिये सत्संग अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। सत्संग का तात्पर्य यह है कि आचार और विचार में अपने से श्रेष्ठ पुरुषों की संगति में बैठना। ऐसे पुरुषों के पास बैठने से उसके भीतर सद्गुणों का समावेश होता रहता है और दुर्गुण छूटते रहते हैं। अयोग्य पुरुषों के पास बैठने से मनुष्य में दुर्गुण आते हैं और बुरे कामों के करने की प्रवृत्ति बनने लगती है। यही कुप्रवृत्ति अन्त में उसके पतन का कारण बन जाया करती है, इसलिए सत्संग में रहना और कुसंग से बचना प्रत्येक मनुष्य और विशेष कर नवयुवकों का मुख्य कर्त्तव्य है।

आत्म निरीक्षण

सत्संग से मनुष्य के हाथ में गुण वृद्धि के बाहरी साधन आया करते हैं। भीतरी साधनों के प्राप्त करने के लिये आत्म-निरीक्षण (Self introspection) का आश्रय लेना पड़ता है। आत्म-निरीक्षण का भाव यह है कि मनुष्य को शान्ति के साथ एकान्त में बैठकर अपने गुण, दोष, शुभाशुभ कर्मों और अपनी सुप्रवृत्ति और कुप्रवृत्ति पर विचार करना चाहिये। मनुष्य अपनी बुराइयों को जानकर ही उन्हें छोड़ा करता है। उनके जानने का साधन यह आत्म-निरीक्षण ही है। इसलिए आत्म-निरीक्षण को भी मनुष्य को अपने दैनिक समय विभाग में स्थान देना चाहिये।

पांचवां अध्याय

पहला सर्ग

प्रारम्भ

विद्यार्थी जीवन को श्रेष्ठ बनाने के उद्देश्य से ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन किया जा सके इसके लिये विद्यार्थी जीवन का क्रियात्मक रूप, अवस्था भेद से क्या हो, यह वर्णन किया जाता है। पहले अध्याय के अन्तिम सर्ग के अन्त में विद्यार्थी-जीवन के समस्त २४ वर्षों का, चार अवस्थाओं में विभक्त होने का उल्लेख हो चुका है। वे अवस्थाएं आयु की दृष्टि से इस प्रकार विभक्त हैं:—

आयु की दृष्टि से अवस्था-भेद

(१) शैशवावस्था १० वर्ष तक (२) बाल्यावस्था ११ से १४ वर्ष तक (३) किशोरावस्था १४ से १८ वर्ष तक (४) युवावस्था १९ से २४ वर्ष तक। इनमें से शैशवावस्था तीन भागों में विभक्त है (१) पहला भाग २ वर्ष तक दूसरा भाग ३ से ५ वें वर्ष तक और (३) तीसरा भाग ६ से १० वर्ष तक।

इनमें से प्रत्येक अवस्था के सम्बन्ध में माता, पिता आदि और स्वयं विद्यार्थी के क्या-क्या कर्त्तव्य हैं, इनका विवरण साथ के आगे के पृष्ठों में वर्णन किया गया है। व्यायाम और आसन क्या-क्या और किस-किस आयु में करने चाहिएँ इनके सम्बन्ध में योग्य डाक्टरों और विशेषज्ञों से भी सलाह ले ली गई है। जो बात अपनी अनुभूत न हो अथवा जिसके सम्बन्ध में विशेषज्ञों से सम्मति प्राप्त न कर ली गई हो, ऐसी किसी बात का उल्लेख इस प्रकरण में नहीं किया गया है। इन प्रारम्भिक शब्दों के साथ क्रियात्मक शिक्षा का प्रारम्भ किया जाता है :—

दूसरा सर्ग

शैशवावस्था

पहला भाग दो वर्ष तक

बच्चे को अधिकतर पालने में, पलंग पर या भूमि पर बिस्तरा बिछाकर स्वच्छ वायु में रखना चाहिए, जिससे उसे हाथ-पांव फेंकने की स्वतन्त्रता प्राप्त रहे। कम से कम समय गोद में रखना चाहिये। गोद में रखने से बालक बन्धन में रहते और हाथ-पांव नहीं फेंक सकते। जो बच्चे अधिकतर गोद में रक्खे जाते हैं वे निर्बल हो जाते हैं। उनका शरीर दुबला-पतला हो जाता है और उन्हें कोई न कोई रोग घेरे ही रहता है।

(२) उन्हें किसी हालत में डराना-धमकाना नहीं चाहिये अपितु भरसक यत्न करना चाहिए कि वे सदैव प्रसन्न और हँसते रहें।

(३) बच्चों के खिलाने आदि से बचने के लिए कई फूहड़ माताएँ उन्हें अफीम खिलाने लगती हैं जिससे वे अधिक समय तक सोते रहें; परन्तु यह प्रथा अत्यन्त हानिकारक है। इससे बच्चे दुर्बल हो जाते हैं और इसी कारण वे समय से पहले मर भी जाते हैं।

(४) इन बच्चों के सामने किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं होने देना चाहिए जिससे उनके भीतर बुरे संस्कार उत्पन्न न होने पावें।

दूसरा भाग ३ से ५ तक

(क) मानसिकोन्नति के लिए क्या करना चाहिये ?

१. जिज्ञासा—इस अवस्था में मानसिकोन्नति के लिए

चार द्वार खुलते हैं। बालक में ज्ञान प्राप्ति की प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है और इसी प्यास के बुझाने के लिए, वह जो भी चीज देखता है उसके सम्बन्ध में, अनेक प्रकार के सम्भव और असंभव प्रश्न किया करता है। माता पिता अथवा जो भी संरक्षक ऐसे बालकों का हो, उसका कर्त्तव्य है कि वह बालक के प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देकर उसे सन्तुष्ट करता रहे जिससे उन्नति का यह द्वार बराबर खुला रहे और इस अंश में उसकी उन्नति होती रहे। यदि किसी समय बालक के प्रश्नों के उत्तर देने का अवकाश न हो तो बालक से यही कहकर वादा कर लेना चाहिये कि किसी दूसरे समय उत्तर दिया जायगा। परन्तु किसी हालत में भी उसको डाँट-डपट कर चुप नहीं करना चाहिये। डरा धमका कर बालक को चुप करते रहने का कुफल यह होता है कि उसकी जिज्ञासा का द्वार बन्द हो जाता है और उसके साथ ही ज्ञान-वृद्धि की चाल भी धीमी पड़ जाती है।

२. कल्पना—बालक में किस्से-कहानी सुनने की इच्छा की उत्पत्ति के साथ ही कल्पना की उत्पत्ति होती है। इस भावना को जागृत करने और उत्तम बनाने के लिए आवश्यक है कि माता-पिता उन्हें छोटी-छोटी शिक्षा-प्रद कहानी रात्रि में सोने से पहले सुनाते रहा करें। कहानी सुनाने से पहले उनसे कह दिया करें कि सुनाई हुई कहानी दूसरे दिन उन्हें (बालकों को) सुनानी पड़ेगी जिससे कहानी के याद करने में उनकी रुचि बढ़ जाय। कहानी के नमूनों के लिए देखो परिशिष्ट (क)

३. अनुकरणी शीलता—इस शक्ति के भी प्रादुर्भूत होने का यही समय है। अपने सहवासियों को बालक जो भी करते देखता है वैसा ही काम स्वयं करने लगता है। माता-पिता

को सन्ध्या करते देखकर बालक भी पलथी मार और आंखें बन्द करके बैठ जाता है। कई पुत्रियां माता को भोजन बनाते देखकर, अपने खेलने के खिलौनों अथवा ईंट पत्थरों से चौका चूल्हा बनाकर भोजन बनाने लगती हैं। एक वैद्य का बालक नब्ज देखने की नकल करना शुरू कर देता है इत्यादि। यह शक्ति बालकों के लिये उपयोगी सिद्ध हो, इसके लिये बालक के पास रहने वाले, माता पिता आदिकों को आदर्श चरित्र वाला होना चाहिये। उन्हें किसी हालत में भी बच्चों के सम्मुख सिग्रेट आदि दुर्व्यसनों का सेवन नहीं करना चाहिए, न झूंठ बोलना चाहिये, न उनके साथ कोई असद् व्यवहार करना चाहिये जिससे बालकों को कोई बुराई नकल करने को न मिल सके।

अभिवादन-शीलता—इसी आयु में, माता-पिता आदि माननीय स्त्री-पुरुषों की बात मानने और उनका मान करने की योग्यता भी, बालकों में आ जाती है। माता-पिता आदि को चाहिये कि बालकों पर न्यून से न्यून शासन रक्खें और जिन बातों को बालकों से मनवाना चाहें वे अधिक से अधिक वही होनी चाहिएँ जिनसे बालकों में नम्रता और विनयशीलता तो बनी रहे परन्तु दासता न आने पावे।

५. धर्म शिक्षा—"मैं सदैव सत्य बोलूंगा और निर्भीक रहूंगा" ये शब्द बालक को उठते-बैठते, सोते-जागते सदैव याद रखने चाहियें और ईश्वर से प्रतिदिन प्रार्थना करनी चाहिये कि उसका यह व्रत भंग न हो।

६. मौखिक शिक्षा—इतिहास, भूगोल और गणित की प्रारम्भिक बातें जबानी ही सिखलानी चाहियें जिससे बुद्धि का विकास हो और दृष्टिकोण में विशालता आवे।

(६) शारीरिकोन्नति के लिए क्या करना चाहिये ?

(१) दौड़— एक फरलांग से शुरू करके क्रमशः ४ फरलांग तक बढ़ा लेनी चाहिये।

नोट—दौड़ का अभ्यास करते हुए कतिपय बातों का ख्याल रखना चाहियेः—

(क) यथासम्भव नंगे पांव दौड़ना चाहिये अन्यथा पांव का स्वाभाविक विकास न हो सकेगा और पांव उठा-उठा कर दौड़ना चाहिये।

(ख) मुंह बन्द रखना चाहिये, श्वास सदैव नाक ही से लेना चाहिये। मुंह से श्वास लेने से फेफड़े को हानि पहुंचती है।

(क) मुट्ठी बांधकर दोनों हाथों को छाती के बराबर रखना और छाती को सामने तना हुआ रखना चाहिये और आंखें भी सामने ही रखनी चाहिएँ।

(१) खेल—कबड्डी आदि दौड़ से सम्बद्ध खेलों का खेलना उपयोगी होता है।

तीसरा भाग—छठे से लेकर दसवें वर्ष तक।

(क) मानसिक उन्नति

१. ज्ञान पिपासा—इस आयु में बालक को प्रत्येक बात के पूछने की जरूरत नहीं रहती। अब वह थोड़ा बहुत जान चुका होता है। अब उसके अन्दर रुचि उत्पन्न होती है कि अधिक से अधिक ज्ञान संग्रह करे और इसीलिये उसे इच्छा होने लगती है कि वह भी स्कूल या पाठशाला में जावे और पुस्तकों का अध्ययन करके तरह-तरह की मालूमात हासिल करे। यही समय था जिसमें पुराने जमाने में बालक गुरुकुलों को

भेज दिये जाते थे जहां उनकी ज्ञान-पिपासा शक्ति का इस प्रकार विकास होता था जिससे वे ठीक सत्यपथगामी हो जाते थे। अब भी वर्तमान परिस्थिति के अनुसार पुरातन पद्धति में उचित फेर-फार करके यत्न करना चाहिये कि बालक उसी उद्देश्य को प्राप्त कर लेवें, चाहे उनके चलने का मार्ग दूसरा ही क्यों न हो।

२. विवेक शक्ति का उदय—भी इसी अवस्था में होता है और बालक खेल और काम में तमीज करने लगता है। इस अवस्था में बालक को अच्छी तरह बतला देना चाहिये कि उसके खेल और काम का समय-विभाग क्या है? और यह भी भलीभांति जहन-नशीन करा देना चाहिये कि उसका लाभ इसी में है कि वह खेल के समय में खेले और काम के समय में काम करे।

३. अनुकरण शीलता—यह शक्ति दूसरे भाग ही से आती है। अवश्य उसका रूप कुछ उन्नत होता है। इस अवस्था में भी उसके सहवासी (माता, पिता और गुरु) आदि आदर्श चरित्र वाले होने चाहिएँ जिससे बालक को कोई कुचरित्र अनुकरण करने को न मिल सके★।

★यह दुःख की बात है कि पश्चिमी सभ्यता ने इस ऊंचे आदर्श की अवहेलना की है। इस समय के गुरुओं ने शिष्य के लिये आदर्श यह बनाया है कि "Do what I say dont do what I do" अर्थात् "तुम वह करो जो मैं कहता हूँ वह मत करो जो मैं करता हूँ।" परन्तु याद रखना चाहिये कि यह आदेश अस्वाभाविक है, अनुकरण शीलता बालकों का स्वाभाविक गुण है।

४. नियन्त्रण स्वीकार करने की योग्यता—का प्रादुर्भाव इसी अवस्था में होता है और बालक बड़ों के आदेश से कुछ देर जम कर काम करने लगता है। यह अवस्था बड़ी सावधानी के साथ शिक्षा देने की है। नियन्त्रण की शिक्षा और स्वयं नियन्त्रण ऐसा होना चाहिये जिससे बालकों में स्वतन्त्रता का प्रेम तो उत्पन्न हो परन्तु वे उच्छृंखल न होने पावें और न उनमें दासता आने पावे।

५. धर्म शिक्षा—दो बातें सदैव याद रखने योग्य हैं।

१—मैं सदैव सत्य बोलूंगा और निर्भीक रहूंगा।

२—यह सत्य-वादिता और निर्भीकता ईश्वर पर विश्वास रखने से प्राप्त होती है।

६. मौखिक शिक्षा—इतिहास, भूगोल और गणित की दूसरी अवस्था के बाद की ऐसी शिक्षाएँ जो मौखिक बतलाई और समझाई जा सकें।

(ख) शारीरिक उन्नति

१. दौड़—पूर्व्व वर्णित नियमानुसार एक मील तक दौड़ने का अभ्यास ४ फरलांग के बाद बढ़ाना चाहिये।

दौड़ने से फेफड़े पुष्ट होते हैं, हृदय दृढ़ होता है और मनुष्य में चुस्ती तथा (Activity) आती है।

२. आसन—दो आसन जिनका विवरण नीचे दिया जाता है, आधे मिनट से शुरू करके प्रति दो सप्ताह आधा-आधा मिनट बढ़ा कर तीन मिनट तक करना काफी होगा। ये आसन छठे वर्ष के प्रारम्भ ही से शुरू कराये जा सकते हैं।

भुजंगासन—पट लेट कर पांव से कमर तक भूमि से लगा रहने दो। नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेली भूमि पर टेक कर छाती से सिर तक का भाग उसी प्रकार से उठा लो जैसे सांप अपना फन उठाता है।
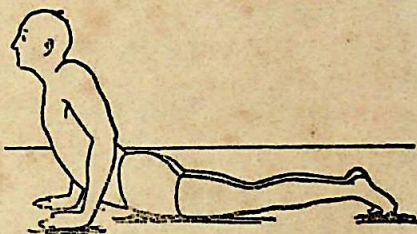
इस आसन से जठराग्नि तीव्र और मन्दाग्नि से सम्बद्ध सभी रोग दूर होकर भूख अच्छी लगने लगती है।

शलभासन—"शलभ" टिड्डी (Locust) को कहते हैं उसी के समान आकार बना लेना इस आसन का उद्देश्य है।

भूमि पर पेट के बल लेट कर नाभि के दोनों ओर हाथों को हथेली के बल रख कर नाभि के नीचे ऊपर (पांव और शिर की ओर) चार-चार अंगुल शरीर का भाग पृथिवी पर रखकर छाती, शिर और पांव ऊपर उठा लो।

इस आसन से जांघ, पेट, बाहु आदि पुष्ट होते हैं।

तीसरा सर्ग

किशोर अवस्था—

(११ से १४ वर्ष पर्यन्त)

शैशवावस्था के तीनों भागों को व्यतीत करके अब बालक विद्यार्थी जीवन के दूसरे भाग किशोर अवस्था में प्रवेश करता

है। इसमें वह किस प्रकार आगे बढ़े इसका विवरण नीचे दिया जाता है:—

(क) मानसिक उन्नति

१. **आत्म-सम्मान की ओर प्रवृत्ति**—उद्बुद्ध होती है और इस उद्बोधन का फल यह होता है कि माता, पिता और गुरु की अनुचित घुड़की अथवा मार-पीट असह्य प्रतीत होने लगती है और वह, इनके सहने को, लगभग अपमान समझने लगता है। इसलिए आवश्यक है कि माता पिता आदि, को बड़े बालक के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, इस सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण बदल लेंवे और इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रक्खें कि उनके किसी व्यवहार से बालक अपने को अपमानित न अनुभव करे। जो अल्पबुद्धि माता-पिता आदि इस अवस्था वाले बालक को उचित, अनुचित सभी रीति से डराया धमकाया और अपमानित किया करते हैं और बालक, दुःखी हृदय ही से क्यों न हो, उन्हें बार-बार सहा करता है तो उसके दो फल होते हैं—

(१) बालक निर्लज्ज हो जाता है।

(२) बड़ी हानि यह होती है कि आत्म-सम्मान की ओर प्रवृत्ति अविकसित रह जाती है और बालक उस उच्च साहस से सदा के लिए वंचित हो जाता है जो मनुष्य को अपमान सहने की अपेक्षा मर जाने को सुगम बना दिया करता है❀।

(❀) विद्वानों ने अनुभव किया है कि अत्याचार करने वाले की अपेक्षा अत्याचार को सहने वाला अधिक पापी होता है क्योंकि अत्याचार सहने ही से अत्याचार करने वालों की संख्या-वृद्धि होती है। इसलिये उन्हें कभी किसी का अत्याचार सह कर अपने को पापी नहीं बनाना चाहिये।

इस सम्बन्ध में बालकों को भी एक बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये और वह यह है कि आत्म-सम्मान प्रायः दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ करता है। एक अपने मान की रक्षा करना दूसरे अपने को ऐसा बनाना जिससे उसके भीतर से उसके लिए सम्मान की भावना उत्पन्न हो। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है। कल्पना करो कि एक व्यक्ति ने बड़ी चतुरता से, जिससे कोई जान न सके, किसी दूसरे व्यक्ति की कोई चीज चुराली। यद्यपि कोई दूसरा मनुष्य इस दुष्कृत्य से जानकार नहीं, परन्तु पहला व्यक्ति स्वयं तो जानता है कि उसने चोरी की है। उसके भीतर यह भावना मौजूद है कि वह चोर है। इस-लिए स्वयं उसके भीतर उसका मान नहीं है, इससे साफ जाहिर है कि वह व्यक्ति चोरी करने से आत्म-सम्मान से वंचित हो गया। इसलिये आवश्यक है कि अन्यों से अपने मान की रक्षा का विचार उसी समय सार्थक हो सकता है जब पहले यत्न करके बुराई और अवगुण से अपने को बचाते हुये, मनुष्य अपने भीतर अपने लिए सम्मान की भावना पैदा कर ले।

२. अनुभव करके मानने की इच्छा का विकास भी इसी अवस्था में होता है। बालकों में स्वतः प्रवृत्ति उत्पन्न होती है जिससे उनसे जो बात भी कही जाय उसे स्वी-कार करने के पूर्व उसे देखने या किसी दूसरे प्रकार से अनुभव करने की, वे इच्छा करने लगते हैं। इसी इच्छा के विकास के साथ ही तर्क करके मानने की भावना भी उत्पन्न होती है जिस का अधिक विकास रेखा-गणित और न्याय (तर्क) शास्त्र (Logic) पढ़ने से होता है। बालकों को देखकर या तर्क करके मानने का अभ्यास, यत्न करके बढ़ाना चाहिए। इससे वे सदैव असम्भव बातों के मानने और अन्ध विश्वास से बचे रहेंगे।

३. सूक्ष्म बातों के समझने की योग्यता—इस अवस्था वाले बालकों में सूक्ष्म विषयों के समझने की भी इच्छा उत्पन्न होने लगती है। गणित, रेखा गणित के प्रश्नों के हल करने तथा ऐसे ही अन्य विषयों के सोचने से, जिनमें बुद्धि को लगाना पड़े, यह योग्यता बढ़ती है। विद्यार्थी को इस योग्यता के बढ़ाने का भरसक यत्न करना चाहिए।

४. शरीर को पुष्ट करने की इच्छा—विद्यार्थी में इस अवस्था में, अपने शरीर को पुष्ट करने की भी इच्छा उत्पन्न होती है। इसके लिए उसे व्यायामादि के सिवा ब्रह्मचर्य्य का पालन करना चाहिए। इस प्रकरण में ब्रह्मचर्य्य का भाव यह है कि शरीर में जो रक्त (वीर्य) उत्पन्न हो यह किसी प्रकार से नष्ट न होने पावे। तख्त पर सोने, गुदगुदे बिस्तर पर न सोने, खड़ाऊँ पहनने, खटाई, लाल मिर्च, तम्बाकू तथा दूसरे नशों के सेवन न करने और कुसंगति से बचने से ब्रह्मचर्य्य का पालन और वीर्य्य की रक्षा होती है।

चेतावनी

विद्यार्थी को समझ लेना चाहिए कि बालकों की अवस्था १३ से १७वें वर्ष की आयु तक ऐसी होती है कि वे सरलता के बाहुल्य और बुद्धि की अपरिपक्वता के प्राचुर्य्य से, सुगमता से बहकाए जा सकते हैं, इसलिए उसे दृढ़ता के साथ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए:—

(१) माता-पिता आदि जो उसके संरक्षक हैं उनके सिवा कभी किसी भी व्यक्ति की दी हुई कोई चीज चाहे वह खाने-पीने की हो अथवा अन्य प्रकार की, किसी हालत में भी ग्रहण नहीं करेगा।

(२) किसी हालत में भी माता-पिता आदि के सिवा, किसी व्यक्ति के साथ, चाहे वह विद्यार्थी, अध्यापक अथवा कोई अन्य पुरुष हो, कभी एकान्त-सेवन न करेगा, न किसी के बहकाने, फुसलाने में आकर उनके साथ सैर करने या सिनेमा, थियेटर आदि देखने के लिए कभी जायेगा।

(३) किसी के प्रलोभन आदि में आकर कभी कोई ऐसा काम, जैसे हस्तमैथुन आदि कदापि न करेगा।

(ख) शारीरिक उन्नति

कोनासन

१. कोनासन—ड्रिल के लिये जिस प्रकार खड़े होते हैं चुस्ती से तन कर खड़े हो जाओ। हाथों को ऊपर की ओर सीधा खड़ा कर लो। शिर का पिछला भाग, पीठ और पांव की एड़ी एक सीध में हों। एक पांव को सीधा रहने दो। दूसरे पाँव को घुटने से मोड़ कर उसी ओर के हाथ से मुड़े हुए पांव के अंगूठे का स्पर्श करो। जिधर का पांव सीधा है उस ओर के हाथ को पूर्ववत् ऊपर की ओर पाँव की सीध में रहने दो। खड़े हाथ को जब अंगूठे का स्पर्श करने के लिये लाओ तो उसे सीधा, बिना मोड़े हुए धीरे-धीरे बहुत मन्द गति से लाओ। सीधे और मुड़े हुए पांव का अन्तर अपने हाथ से लगभग दो हाथ रक्खो। ३ सैकिंड इस स्थिति में रहकर
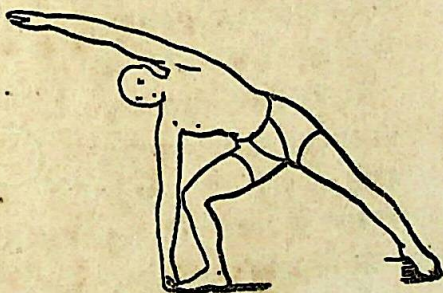
पूर्ववत् ऊपर हाथ खड़े किये हुए हो जाओ और अब दूसरे पांव को मोड़ कर उसके अंगूठे का उसी ओर के हाथ से हाथ स्पर्श करो। बाकी शरीर की स्थिति पूर्ववत् रहने दो और इस दूसरी स्थिति में भी ३ सैकिंड रहकर आसन समाप्त कर दो। प्रारम्भ ३ सैकिंड से करके दो सैकिंड प्रतिमास के हिसाब से बढ़ाकर एक मिनट तक पहुंचा लो। यदि पहली स्थिति समाप्त करने पर थकान मालूम हो तो एक दो मिनट विश्राम करके दूसरी स्थिति में आओ।

इस आसन से पेट, पीठ और बगल के स्नायुओं को स्वस्थ और निर्दोष रहने में सहायता मिलती है और यदि उनमें कुछ विकार हो तो दूर हो जाता है।

२. धनुरासन—भूमि पर पट लेट कर अपने हाथों से दृढ़ता से पांवों की एड़ियों को नीचे से पकड़ लो। इस प्रकार कि नाभि के इधर-उधर चार-चार अंगुल शरीर का भाग भूमि पर रहे और बाकी सारा शरीर भूमि से कुछ ऊंचा हो जाय। हाथ पांव की एड़ियों को अपनी ओर अच्छी तरह खींचें और पांव अपनी ओर तनाये रक्खें। इस प्रकार दोनों ओर की खिंची हुई स्थिति का नाम धनुरासन है। इसे को सुप्त उष्ट्रासन भी कहते हैं।
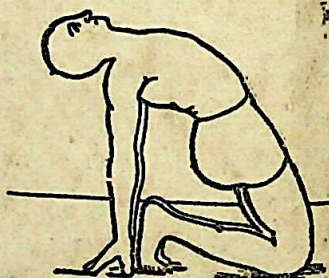
धनुरासन

यह आसन प्रायः सभी अंगों के लिये हितकर है। विशेष पेट के लिए बहुत लाभदायक है। यह आसन प्रारम्भ में सैकिंड प्रतिवार के हिसाब से तीन बार करना चाहिए और प्र

... एक-एक की वृद्धि करके सात बार तक पहुंचाना चाहिए।

३. दौड़—एक मील तक की दौड़ का अभ्यास पूर्ववत् ...री रखना चाहिये।

(ग) धर्म-शिक्षा

(१) मैं सदैव सत्याचरण करूंगा और निर्भीक रहूंगा।

(२) मैं सदैव आस्तिकता (ईश्वर विश्वास) का जीवन व्यतीत करूंगा।

(३) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(४) वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना सुनना सुनाना मनुष्य मात्र का धर्म है।

...था सर्ग

कुमार अवस्था

(१५ वें से १८ वें वर्ष पर्यन्त)

अब विद्यार्थी, विद्यार्थी-जीवन की तीसरी कुमार अवस्था ...द्वार पर पहुंच गया है। किस प्रकार इस द्वार में प्रवेश करे ...ससे, वह अवस्था-रूप गृह, सुखप्रद हो, और प्रवेश कर ...त्म-सम्मान जीवन व्यतीत कर सके उसी "प्रकार" का ...वरण दिया जाता है। उस विवरण के देने से पूर्व यह बतला ...ा आवश्यक है कि इस अवस्था में शरीर के सभी अङ्गों की ...ो जाती है। लड़के और लड़कियों की आवाज में यहीं ...द शुरू हो जाता है और बालक की प्रवृत्ति स्वभावतः ...रस की ओर होती है। उसे इसी रस में सने हुए गीत, ...लगने लगते हैं। ऐसी ही पुस्तकों की वह खोज करता ...से ही सिनेमा, थियेटर आदि को देखने की रुचि इसमें

rding
chers

5.2 In these cases, the calculation sheet should be prepared
plicate (Quadruplicate in the case of revision of pension by Banks
original containing the option form duly signed and duplicate shoul
sent alongwith the pension payment voucher to the concerned Acco
Officer. These schedules should be distinct and separate from th
mal payment schedules and should be addressed to the concerned
ounts Officer through usual channel.

5.3 The triplicate copy should be retained in records of the P
Disbursing Authority and support the revised entries in the Check

5.4 In case of pensioners drawing pension through Banks, the
should prepare the calculation sheets in quadruplicate and should
original and duplicate (and also triplicate in case of Railway and P
to the concerned Accounts Officer as stated in para 5.2 above, the
plicate-copy should be sent to the concerned Treasury Officer for
dating his records.

6. In case a pensioner is in receipt of two pensions from the C
tral Government (including Defence, P&T and Railways), the pens
will not be revised by the Pension Disbursing Authority who will
ly forward the papers to the respective Accounts authorities, ind
that the pensioners is in receipt of two pensions. The Accounts
concerned with the first pension will revise the pension amount (ex
ding dearness relief) and intimate the same to the Accounts Office
second pension (with a copy to the Disbursing Auth
ion). The latter Accounts Officer will revise the
he dearness relief admissible on the two pensions
e to the Pension Disbursing Authority (with a copy
concerned with the first pension).

sion Disbursing Authority is unable to revise the
n, e.g., for want of complete particulars requir
forward the papers to the Accounts Officer conc
nsion.

Officer' means the authority who issued Pensio
n Payment Order viz. Accountant General, Pa
Director (Postal Accounts), Railways Accounts
er Defence Accounts as the case may be. Lis
ral is attached for convenience.

T OF ACCOUNTANTS GENERAL DEALING WITH CENTRAL PENSION CA